विशिष्ट स्थलों की शास्त्रीय व्याख्या

ख्या



शैलेन्द्र ठाकुर

मूल्य—डेढ़ रुपया

'चन्द्रगुप्त'
के
विशिष्ट स्थलों की
शास्त्रीय व्याख्या

शैलेन्द्र ठाकुर

एजुकेशनल बुक सिन्डिकेट
सी. ३/२ चेतगंज; बनारस

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्

—कालिदास

उपोद्घात

प्रस्तुत पुस्तक में 'चन्द्रगुप्त' नाटक के कतिपय मार्मिक प्रसंगों के माध्यम से नाटक की नाट्य-शास्त्रीय एवं व्याख्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की गई है। यथासम्भव मूल पाठ्य से सम्बद्ध सामग्री को अधुनातन शैली में उपस्थित किया गया है। देखें। वैसे आलोचना के नाम राख-पात से भरी पुस्तकों की कमी क्या ? उन्हें पढ़ा भी जाता है। ऐसा भी होता है कि मूल पुस्तक से पाठक का तनिक भी परिचय नहीं रहता और वह पुस्तक की सफल-आलोचना भी कर लेता है। यह सब सस्ती आलोचनाओं का ही कुफल है। कितने आलोचक-प्रवरों से अपना निकट परिचय है जिनकी 'तुलसी' और 'प्रसाद' पर भारी भरकम पुस्तकें हैं किन्तु, न तो वे 'विनय पत्रिका' के एक पद्य का अर्थ ही कर सकते हैं, न 'कामायनी' के 'लज्जा सर्ग' की किसी एक पंक्ति की व्यञ्जकता का— उद्घाटन ही। ग्रन्थ के मूल प्रसंगों के आधार

पर की गई समीक्षा से पाठक समीक्षा और मूल दोनों से परिचित होगा। सोचने और प्रस्तुत करने की शैली भी मिलेगी।

किन्तु;

सब कुछ फूल ही नहीं होता। कांटे भी होते हैं और उनकी चुभन से दर्द भी। जिनके लिये लिखी गई उनका कुछ काम सरा तो बहुत है। अन्यथा साहित्य की रूई धुनने वाले धुनियों के निट्ठले हाथों के लिये एक सौदा ही सही।

शैलेन्द्र



—प्रथम अंक—

१—राजकुमार, ब्राह्मण न किसीके राज्य······ज्ञानका दान देता है।
पृ० सं० ५६

आरम्भ

आलोच्य प्रसंग जयशंकर 'प्रसाद' जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटकसे लिया गया है। 'आम्भीक' का यौवनोचित राज-दम्भ और चाणक्य का ब्राह्मणत्व दोनों टकराते हैं. जिससे नाटकीय संघर्ष की उद्‌भावना हो जाती है। चाणक्य का प्रत्युत्तर ही उद्‌धृत किया गया है।

प्रस्तार

ऐतिहासिक सत्य है कि सिकन्दर के आक्रमण का काल सामरिक संघर्ष के साथ ही मानसिक और बौद्धिक संघर्ष का काल था। अधिकार हस्तगत होनेके कारण क्षत्रिय; और विद्या, विवेक तथा परम्परा पक्ष में होनेके कारण ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ समझते थे। उपनिषदों और बौद्धों के साहित्य में क्षत्रियों का बौद्धिक संघर्ष स्पष्ट दिखाई पड़ता है। 'नाटकीय-संघर्ष' की उदभावना इसी ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर आम्भीक और चाणक्य के संवाद के द्वारा की गई है। चाणक्य का उद्‌बुद्ध ब्राह्मणत्व प्रस्तुत प्रसंग में विवृत किया गया है।

विश्लेषण

'मेरे ही राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे ही विरुद्ध

कुचक्रों का सृजन।' आम्भीक की इस दम्भोक्ति के उत्तर में चाणक्य का कथन है—'ब्राह्मण राज्य और दान की संकुचित सीमासे बँधा नहीं होता। ज्ञान और साधना का उसका अपना राज्य होता है। वह जीवन-मरण की चिन्ताके प्रति निरपेक्ष भावना रखता है। ब्राह्मण में राज्य संचालन की शक्ति का अभाव नहीं होता लेकिन धन और राज्य की लिप्साको भव-बन्धन मान कर वह उपेक्षा करता रहता है। वह सृष्टि के मंगल के लिए ज्ञान ओर अनुभूति से मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन करता रहता है। किसी भी क्षत्रिय का, राज्य-संचालन की सामर्थ्य अथवा किसी भी प्रकार का अभिमान, मात्र अभिमान ही हो सकता है—ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ होता है।'

वैशिष्ट्य—

अ—चरित्रगत

१—चाणक्य का प्रबुद्ध ब्राह्मणत्व झनझना उठा है। ब्राह्मण, शक्ति और द्रव्य से हीन होने पर भी बुद्धि और विद्या से युक्त होता है। श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मणत्व चाणक्य के चरित्र की एकान्त विशेषता है। पूरे नाटक में, जब भी उसे तनिक सी ठेस लगती है—बादल की भांति उसके कृष्ण शरीर में दीप्त ब्राह्मणत्व की बिजली चमक उठती है। 'प्रसाद' जी ने उसकी इस चरित्रगत विशेषता का उपस्थापन और निर्वाह दोनों सम्यक् रीति से किया है। आलोचकों में विवाद तक उठ गया कि नाटक का नायक कौन है चन्द्रगुप्त अथवा चाणक्य।

२—चाणक्य का ब्राह्मणत्व बहुधा अपमान के स्थलोंपर ही उद्दीप्त होता है। वैसे वह एक गुरु गम्भीर राजनीतिज्ञ और कुटिल मनुष्य है। आम्भीक, पर्वतेश्वर और नन्द से क्रमशः तीन बार अवमानित होता है और तीनों बार 'पददलित ब्राह्मणत्व' की दुहाई देता है। नाटकीय 'फलाप्ति' के समय तक तीनों से उसका प्रतिशोध किसी न किसी रूप



में चुक ही जाता है। वस्तुतः आम्भीक पर्वतेश्वर और नन्द का पतन, चन्द्रगुप्त की विजय की अपेक्षा ब्राह्मणत्व की विजय का प्रतिफल है। चाणक्य के 'ब्राह्मणत्व' की परिधि में 'प्रिय' 'अप्रिय' का कोई प्रश्न नहीं है। यहाँ तक कि निर्मम ब्राह्मण चाणक्य चन्द्रगुप्तको एक बार माता-पिता और गुरु प्रत्येक से हीन बनाकर छोड़ देता है। विवेच्य स्थलपर उसके क्षुब्ध ब्राह्मणत्व का प्रथम रूप दिखाया गया है।

व—संवादमूलक

प्रसाद के संवाद प्रायः अभिनय योग्य नहीं होते*। आकार विषयक लघुता, विचारों का व्यवस्थित क्रम, चारित्रिक महत्व का उद्घाटन आदि संवाद विषयक बाह्य विशेषताओं के रहने पर भी भाषा और काव्याधिक्य के कारण नाटकीय रस-निष्पत्ति में बाधा पड़ा करती है। प्रस्तुत स्थल पर चाणक्य की भाषा में औपनिषदिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है। 'अमृत', 'प्रकृति', 'मायास्तूप', 'अन्न' इत्यादि शब्दों की अर्थ-सीमा सामान्य पाठक या दर्शक के लिये बोध्य नहीं है।

स—नाट्यशास्त्रीय—

विवेच्य प्रकरण में नाटकीय अवस्था का प्रारम्भ, प्रकृति का बीज और सन्धियों में मुखसन्धि का रूप दिखाई पड़ता है। नाटकीय संघर्ष का आरम्भ भी प्रस्तुत स्थल से ही हो जाता है। इसी घटना के प्रयत्न-विस्तार से नायक का सहसा आगमन हो जाता है और कथानक से नायक सम्बद्ध भी हो जाता है।

उपसंहार

चाणक्य का यह प्रत्युत्तर भाग नाटक की सारी विशेषताओं के

---

* प्रसाद के नाटकों का दोष शायद उनके गुणों से अधिक स्पष्ट है। उनकी परिवर्तनशील गम्भीर भाषा में अभिनयोचित चांचल्य नहीं है।—डा० नगेन्द्र

निर्माणमें विशेष महत्व रखता है। चाणक्य का व्यक्तित्व (चरित्रगत महत्व के साथ) उसकी संलाप-शैली; उसका ज्ञान, और ज्ञानजनित-स्वाभिमान और सम्पूर्ण नाटक में प्रतिफलित होनेवाले उसके समग्र-व्यक्तित्व का सूत्रपात भी इसी स्थल से हो जाता है। नाट्यशास्त्र की शास्त्रीय विशेषताओं, आरम्भ, बीज, मुख और नाटकीय संघर्ष का भी आरम्भ इसी स्थल पर होता है। चाणक्य के व्यक्तित्व-निर्माण में प्रस्तुत सवाद एक Mile Stone का काम करता है। उसका पौरुष, आत्म-विश्वास, निर्भय उत्तर देने की शक्ति एक तरह से उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व इन पंक्तियों में सँजो दिया गया है। सम्पूर्ण नाटक में इन पंक्तियों का तात्विक मूल्य है।*

(२) हाँ हाँ रहस्य है ! यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल...... उद्घाटन करने गये थे।

पृ० सं० ५८

---

* "प्राचीन ब्राह्मणों की उत्कृष्ट बुद्धि और उग्रता की अनेक कथाएँ और प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त हैं। ऐसे व्यक्तियों की एक छाप हमारी संस्कृति पर दिखाई पड़ती है। चाणक्य शुद्ध ब्राह्मण-शक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। अपनी जातिगत मर्यादा का प्रबल समर्थक है। ब्राह्मणों के सर्वस्वतंत्र और आध्यात्मिक विभूतिमय जीवन का बार बार स्मरण करके वह गर्वित हो उठता है। यदि कोई रंचमात्र भी अपनी कृतज्ञता से उसे उसे दबाना चाहता है तो उसके विरुद्ध चाणक्य के जो वचन निकलते हैं, उनमें दर्प भरा उत्साह दिखाई पड़ता है—

ब्राह्मण न किसी के.........दान देता है।"

डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा: 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'

प्रारम्भ

सहनायक और चन्द्रगुप्त के अनन्य सुहृद सिंहरणका आकुल और स्पष्ट विरोध इन पंक्तियों में संजोया गया है। आम्भीक के प्रगल्भ प्रलाप का उत्तर देने के अवसर पर उसकी वाणी में वीरोचित उत्तेजना देशप्रेमोचित वितृष्णा, और तिरस्कार-सम्भव व्यङ्ग्य भी आ जाता हैं। सिंहरण का कथन ही विवेचनके लिए उद्धृत किया गया है।

प्रस्तार

अलका के समझाने पर आम्भीक मानता नहीं, और अपने राजकीय दम्भ के कारण, चाणक्य चन्द्रगुप्तादि की आपसी चर्चा के रहस्य का उद्घाटन चाहता है। सिंहरण को संदेह की दृष्टि से देखता है। अलका को डाँटता है; कहता है 'कुछ रहस्य है।' इस आरोप से सिंहरण का यौवनोचित अभिमान जाग उठता है और नाटकीय व्यङ्ग्य से अपने रहस्य के स्थान पर वह आम्भीक के ही रहस्य को उद्घाटित कर देता है।

व्याख्या

सामान्यार्थ

सिंहरण, तिरस्कार व्यक्त करते हुए आम्भीक को एक प्रकार का उपालम्भ देता है। कहता है कि आक्रामक सिकन्दर से घूस लेकर उसने अत्यन्त गर्हित कार्य किया है। उत्कोच लेकर उसने भारत में सिकन्दर को प्रवेश करने की सुविधा देकर आर्यावर्त्त की सुख-शांति दोनों में विक्षेप डाल दिया है। वह इसी निन्दित कर्म के लिए वाल्हीक तक गया था।

स्पष्टीकरण

(अ) सिंहरण के कथन में उत्तेजना और नवयुवकोचित चांचल्य है। एक गम्भीर राजनीतिज्ञ की तरह वह अपने को सँभालता नहीं है। सिंहरण की भाषा में तक्षशिला का शिक्षा के अनुरूप अधिकार है। 'सुख रजनी' और 'शांति-निद्रा' दो प्रतीकों का प्रयोग उसका साहित्यिक आभिजात्य सिद्ध करता है। 'उत्तरापथ की अर्गला धीरे से खोलने' कथन में, आम्भीक की चोर-वृत्ति का स्पष्टीकरण हो जाता है जिससे व्यङ्ग्य और तीव्र हो जाता है।

(ब) आम्भीक के लिये जिस रूपक का प्रयोग किया गया है वह एक कुट्टनी का है। कुट्टनियाँ उत्कोच लेकर नायिका के भवन की अर्गला (सिटकनी) धीरे से खोल देती थीं, जिससे कामाचारी आ कर नायिका की निद्रा एवं कौमार्य दोनों को खण्डित करता था। अर्गला,* रजनी, निद्रा, इत्यादि उपमानों की सार्थकता इसी रूप में है। इस प्रकार आम्भीक के प्रति कुट्टनी का रूपक आरोपित कर अत्यन्त तीव्र व्यंग्य की योजना की गई है।

(स) 'सुख' को 'रजनी' और 'शांति' को 'निद्रा' से उपमित करने में मात्र आलंकारिकता ही नहीं प्रत्युत 'भाव-सम्पदा' भी है। रात सुख की हेतु मानी गई है। सुख के लिये योग्य समय रात ही है।

---

* अर्गला शब्द का अर्थ सिटकिनी (बेवड़) होता है। पहले घरों में दरवाजों को बन्द करने के लिये डंडे प्रयोग में लाये जाते थे जो दीवार में बने दो छेदों में फिट किये जाते थे। 'अनर्गल' शब्द इसी अर्गला से बना है—जिसका अर्थ होता है अर्गलाहीन अर्थात् निर्बन्ध। किन्तु 'झूठ' और 'प्रसंग बाह्य' के अर्थ में अब यह रूढ़ हो गया है!

अस्तु—शांति की अवस्था में जिस प्रकार का भाव विद्यमान रहता है वह 'निद्रा' की अवस्था में भी रहता है। शांति और निद्रा की समानान्तरता नितान्त सम्मत है। 'सुख की नींद सोना' मुहावरे को तोड़ कर प्रस्तुत प्रतीक तैयार किया गया है। मुहावरे की सारी विशेषताएँ प्रतीक में सुरक्षित रखने की कोशिश की गई है।

यत्किञ्च विशेष

शास्त्रीय

(अ) नाटकीय अवस्था का 'प्रारम्भ' यहाँ प्रयत्नोन्मुख हो रहा है। ठीक इसी समय मंच पर नायक का प्रवेश होता है। प्रकृतिगत 'बीज' कार्य-शृंखला के साथ विवृत हो रहा है। सन्धियों में 'प्रतिमुख सन्धि' के लक्षण भी इस स्थान पर विद्यमान हैं क्योंकि, 'बीज' अंकुरण की ओर अग्रसर हो रहा है। नाटकीय संघर्ष यहाँ क्रियात्मक रूप ले रहा है।

(ब) सिहंरण का कथन नाटकीय व्यङ्गय से प्रारम्भ कराया गया है। आम्भीक, सिंहरण आदि के रहस्य की बात कर रहा है। चाणक्य मुस्करा रहा है, सहसा अप्रत्याशित रूप से उसे अपने गोपन रहस्य का स्पष्टीकरण सुनना पड़ता है। नाट्यकला की दृष्टि से Dramatic irony का प्रयोग यहाँ सफल रीति से किया गया है।

संवाद मूलक

संवाद में नाटकीय व्यङ्गय, उत्तेजना, भावों का स्फुट क्रम, अपेक्षित तिरस्कार और खल-पात्र को दुःखाने की विशेषता सब कुछ है। प्रतीकों के प्रयोग में मुहावरे की गाँठ तोड़ने की सिद्धहस्तता भी है किन्तु सम्भवतः मंच पर यह संवाद सहसा पाठक को अर्थ-बोध नहीं करा पायेगा।

भाषा—

भाषा अत्यन्त भावशबल है। शब्दों पर लेखक का असाधारण अधिकार है। 'पुष्कल स्वर्ण' शब्द में अर्थवत्ता और ध्वनि दोनों है 'पुलकित' शब्द अपने स्थान का अकेला शब्द है जिसमें खलपात्र का स्त्रैण्य लोभ और संवेद्य-तिरस्कार सब कुछ व्यंजित हो जाता है।

उपसंहार

सर्वतोभावेन, प्रस्तुत स्थल नाटक में अपना महत्त्व रखता है। सिहंरण का निर्भय व्यक्तित्व, खुला हुआ स्वभाव, सारी विशेषताएँ इस कथन में प्राप्त होती हैं। सम्भवतः सिहंरण के व्यक्तित्व की सीमा-परिधि की कल्पना इस प्रकरण को लिखने बाद ही लेखक के मन में हो गई होगी। सिहंरण के जीवन-क्रम का सूत्रपात इस स्थान से हो जाता है। अलका की समानुभूति (जो आगे चल कर प्रेम में परिणत होती है) चन्द्रगुप्त का सौहार्द्र, चाणक्य का दुलार और सिहंरण के सारे प्राप्यों का सन्धि-स्थल तथा बीज-स्थल यहीं है। इस प्रसंग की विशेषता इसीलिये भाषा, संवाद, चरित्राभिव्यक्ति नाटकीय संघर्ष और कथानक-प्रस्तुति आदि सभी दृष्टियों से है।*

---

* "मालव गण-तंत्र के राष्ट्रपति के पुत्र सिंहरण का हृदय उसकी प्रारम्भिक वय से ही स्वातंत्र्य और स्वदेशानुराग की भावनाओं से ओत-प्रोत है। तक्षशिला में चाणक्य और चन्द्रगुप्त का सहवास पा कर उसे तत्का-लीन राजनीति में उन्हें सक्रिय रूप देने का उसे अवसर मिला। वह आम्भीक की अविश्वासी एवं देश-द्रोही नीति से आकुल हो उठा और उसने अपनी निर्भीक प्रकृति के अनुरूप उसका खुल्लम-खुल्ला विद्रोह किया—

हाँ हाँ ! रहस्य है......"

जगदीश प्रसाद दीक्षितः 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

(३) तुम मालव हो और यह मागध······आर्यावर्त्त का नाम लोगे
तभी वह मिलेगा
पृ० सं० ६०

आरम्भ

प्रस्तुत अंश, जयशंकर 'प्रसाद' के 'चन्दगुप्त' नाटक के प्रथमांक से लिया गया है। 'सिंहरण' और 'चन्द्रगुप्त' के उद्देश्य के प्रसंग में, चाणक्य उनके कर्त्तव्य की सीमा का निर्धारण करता हुआ और उनका पथ प्रशस्त करता हुआ दिखाया गया है।

विवृति

उस समय का इतिहास बताता है कि देश का शासन, किसी एक निश्चित शासन-प्रणाली के द्वारा नहीं चालित होता था। समग्र देश में किसी एक सार्वभौम सत्ता का अभाव था। सम्पूर्ण देश में छोटे-छोटे सामन्तों का प्रभुत्व था। कहीं राजतन्त्र, कहीं प्रजातन्त्र शासन-शैली से प्रजा-धर्म का पालन किया जाता था। सब अपने क्षेत्र की संस्कृति और राष्ट्रीयता के दम्भ से आत्यन्तिक रूप से चिपटे हुये थे। अपनी सीमा से ऊपर उठ कर देश को एक करके देखने की कल्पना किसी के मस्तिष्क में आ ही नहीं पाती थी। चाणक्य ने सर्वप्रथम इस दोष का उद्घाटन किया था।

व्याख्या

चाणक्य, सिंहरण और चन्द्रगुप्त के जीवन-आदर्श का निर्धारण करते हुए कहता है कि 'मालवा' और 'मगध' के सम्मान को खण्ड-खण्ड करके देखना भारतीय नवयुवक का आदर्श नहीं होना चाहिये। तुम लोग अपनी परम्परावद्ध खण्ड संस्कृति के सम्मान के प्रति अतिशय आग्रहशील हो। लेकिन अपने आत्म-सम्मान की परिधि का विस्तार

करना अपेक्षित है। मालव और मगधा की सीमा से बड़ी और आवश्यक सीमा सम्पूर्ण देश की है। आर्य-जाति जिस भूमि में रहती है उसे सम्पूर्ण रूप से स्वदेश की संज्ञा देनी चाहिये। जब अपनी क्षुद्र स्थानीय सीमाओं से ऊपर उठकर तुम लोग सम्पूर्ण आर्यावर्त्त के मानापमान के प्रति जागरूक होगे तभी विस्तृत आत्म-सम्मान मिल सकेगा।

यत्किञ्च विशेष

अ—इस स्थान पर नाटकीय 'अवस्था' का प्रयत्न आरम्भ हो रहा है। नाटकीय उद्देश्य की स्थापना भी इसी स्थान पर होती प्रतीत होती है। सिंहरण और चन्द्रगुप्त दोनों प्रमुख पात्रों को उद्देश्य की शिक्षा अथवा प्रेरणा देने में 'नाटकीय फल' की साधना एक प्रकार से आरम्भ हो जाती है।

ब—संवाद की भाषा अत्यन्त आकर्षक और प्रेषणीय है। एक महान उद्देश्य का उपदेश प्रस्तुत करने पर भी चाणक्य की कथन-शैली में शुष्कता नहीं है। वह अपने दृष्टिकोण की बात कहता है किन्तु वह जिनके लिये कहता है उनको बना कर कहने की सफल चेष्टा करता है। 'तुम्हारे मान का अवसान है न ?' में एक तरह का अपनापन और दुलार-भरा छुटपन दिखाने की प्रवृत्ति है। कथन में आकर्षण का मनोवैज्ञानिक रहस्य इसी तथाकथित दुलार भरे छुटपन में है।

स—चाणक्य का कथन लम्बा होने पर सोद्देश्यता और आवश्यकता की दृष्टि से बोझिल नहीं है। भाषा में स्पष्टता और रमणीयता है और भाव की दृष्टि से नवयुवकों की वृत्तियों को पहचान कर बड़ी सावधानी से उन्हें महत् उद्देश्य के लिये तैयार किया जा रहा है।

द—कथा वस्तु की विकासावस्था यहाँ स्पष्ट हो रही है। आदर्शों का संघर्ष एक निश्चित सीमा पर पहुँच कर एक निश्चित आदर्श स्थापित कर दे रहा है।

(४) एक अग्निमय गंधक का स्रोत..........मयूर से नाचेगें।
पृ० सं० ६०-६१

प्रारम्भ

नाटकीय उद्देश्य की स्थापना के बाद चाणक्य और चन्द्रगुप्त प्रस्थान करते हैं। सिंहरण अकेला रह जाता है। भविष्य के संघर्ष की कल्पना उसके मस्तिष्क में हो उठती है। वीर है, इसीलिए उसे लगता है कि इस नियति के युद्ध-निमन्त्रण से क्या होगा? और इस होने से वीर हृदय युवकों के मन में क्या होगा?—स्वगतकथन के द्वारा उसके वीरोचित भावों का सम्प्रेषण कर नाटककार नाटकीय व्यंग्य (Dramatic irony) से अलका का प्रवेश कराता है। दोनों मिलते हैं। दोनों के चित्त मिलते हैं और सहनायक की फलाप्ति का उद्देश्य निर्धारण हो जाता है। प्रस्तुत प्रसंग में एकान्त सिंहरण का काव्यमय भाषा में स्वागत-कथन संजोया गया है।

प्रस्तार

अंक का प्रथम दृश्य समाप्त होने को है। कर्तव्य का निर्धारण कर चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण तीनों भविष्य में मिलने के लिये अलग हो रहे हैं। तीनों गांधार छोड़ रहे हैं। गांधार का कुछ इनसे जोड़ना है इसलिये रंगमंच पर सिंहरण छूट जाता है। दोनों चाणक्य और चन्द्रगुप्त चले जाते हैं। 'पताका' का प्रारम्भ करना है इसलिये सम्बद्ध-क्रम के लिये सिंहरण के इस कथन की योजना की जाती है। युद्ध की रण-लक्ष्मी के आमन्त्रण से नाटकीय व्यंग्य के द्वारा नाटककार सहनायक की प्रिया को मंच पर उपस्थित कर देता है। 'पताका' कथानक के नायक और नायिका का कर्तव्य निर्धारण भी प्रस्तुत स्थल पर ही होता है। अस्तु इस प्रसंग का नाटकीय कथा संचार में विशेष महत्व है। आलोच्य प्रकरण सिंहरण का स्वगत-वाचन है।

विश्लेषण

सिंहरण सोचता है एक अग्निमय गंधक स्रोत (क्रम) [की तरह अक्रामक वीर सिकन्दर] आर्यावर्त के लौह अस्त्रागार में (युद्ध-भूमि में) प्रवेश करेगा [अर्थात् एक विजातीय अक्रामक आर्यावर्त पर आक्रमण करेगा और भारतीयों को युद्ध के लिये तैयार होना पड़ेगा। भारतीय अस्त्रागारों में एक हलचल मचेगी—अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ होगा] स्थिर न रहनेवाली (अनिश्चित फल देने वाली) युद्ध की देवी सतरंगी (आकर्षक) विजय-माला ले कर रक्त और हथियारों के कारण नीले और लाल रंगवाले बादल के समान रण-प्रांगण में घूमेगी ! ऐसे अवसर पर वीरों का हृदय उसी तरह मस्त हो जायगा जिस प्रकार सावनी बादलों को देखकर मयूरों का मन मस्त हो उठता है।

स्पष्टीकरण

प्रकरण पूर्ण रूपेण काव्यात्मक है। कई रूपकों की सफल योजना की गई है। 'अग्निमय गंधक का स्रोत' सिकन्दर के व्यक्तित्व के अनुरूप नितान्त उपयुक्त रूपक है। लोहे के अस्त्रागारों में गंधक के द्वारा विस्फोटन होता है। अतः प्रस्तुत उद्भावना में वैज्ञानिक सत्य का समावेश हो जाता है। रूपक, सिकन्दर के विशेषण और प्रतीक दोनों के लिये आया है। इसलिये सार्थकता और भी बढ़ जाती है।

लक्ष्मी को कथानक-रूढ़ियों में अस्थिर-चित्त वाली कहा गया है। चञ्चला शब्द लक्ष्मी का पर्याय भी है। रणलक्ष्मी को, स्वयम्वर के लिये तैयार तरुणी से उपमित किया गया है। युद्ध का फल अनिश्चित और विचित्र होता है इसलिये युद्धगत विजय के लिये इन्द्रधनुष की उपमा उपस्थित की गई है। इन्द्रधनुष में रंगों की अनेकता और क्षणिकता दोनों होती है। सुन्दर भी होता है। अस्तु युद्धगत फल के लिये इस रूपक की योजना में नाटककार की व्यापक निरीक्षण बुद्धि और विषयानुकूल प्रतिभा का दर्शन

होता है। 'युद्ध-भूमि' की बादल से उपमा देकर लेखक ने इन्द्रधनुष वाले रूपक को सार्थक किया है। वीर हृदयों में उठने वाले उत्साह को 'मयूर' की उपमा से उपमित किया गया है। इस प्रकार बादल, इन्द्र-धनुष, मयूर के समग्र प्रभाव को युद्ध-भूमि, विजय-फल, वीरों के उत्साह द्वारा उपमित कर लेखक ने 'साङ्ग रूपक' की आदर्श योजना प्रस्तुत की है। पावस और युद्ध की पारस्परिक तुलना में बड़ी अर्थवत्ता और व्यंजकता है। बरसात में पानी की झड़ी से रक्त-प्रवाह और बाण-वर्षा की भी उपमा एकत्र की जा सकती है। 'बाण वर्षा' शब्द में वर्षा का अभिप्राय बहुत कुछ इसी के आस-पास का है।

आलोचना

काव्यत्व प्रस्तुत प्रसंग की मुख्य विशेषता है। इसी प्रकार के स्थलों के कारण 'प्रसाद' के नाटकों की अभिनेयता नष्ट हो जाती है। दो वाक्यों में ही जितनी आलंकारिक योजना प्रस्तुत की गई है वह सामान्य दर्शक या पाठक के समझ के बाहर की बात है।

प्रस्तुत प्रसंग को पढ़ने से नाटककार की काव्यप्रतिभा के प्रति जितनी ही आस्था उत्पन्न होती है उतनी ही अनास्था नाटक के योग्य भाषा लिखने की उसकी असमर्थता के प्रति भी होती है।

नाटकीय कथानक के विस्तार में प्रकरण का महत्वपूर्ण योग है। सहनायक के प्रेम और नाटक में इस प्रेम के फलस्वरूप फलाप्ति में योग-दान का प्रारम्भ भी यहीं से हो जाता है। वस्तुतः कथानक की 'पताका' का आरम्भ यहीं से समझना चाहिये।

(५) मानव कब दानव से भी दुर्दान्त...........फिर चिंता किस बात की।

पृ० सं० ६१.

उपक्रम

प्रस्तुत अवतरण सिंहरण की विह्वल मनःस्थिति को अभिव्यक्त करता है। अलका से बात करते-करते वह एक दार्शनिक की भाँति प्रलाप (?) करता है। जीवन के प्रति उसकी यह सजग उदासी बड़ी प्रिय लगती है। मनुष्य के व्यवहार और आचार के प्रति वह निश्चित मन से वितृष्णा का भाव लिये है। अपनी शक्ति पर विश्वास करते हुये भी वह अपने को अतीत और भविष्य के विषय में मूक रखना चाहता है। उसकी यह दार्शनिकता भरे हुए हृदय से निकल रही है। स्नेहो-द्रेक की अवस्था में 'प्रसाद' के पात्र अक्सर इसी प्रकार की भाषा का व्यवहार करते हैं।

विवृति

अलका, प्रेम से (हाँ, अत्यक्षरूप से प्रेम से ही) सिंहरण को जीवन और सुख के प्रति आकृष्ट करना चाहती है। नारी के इस नेह-निमन्त्रण पर उसका मन चूकता नहीं। उसे निश्चित रूप से इस नव-परिचिता से वियुक्त होना है। इसलिये वह कुछ निरुद्देश्य और तटस्थ चित्त से बोलता है। मन के दर्द के दमन के कारण उसकी उक्तियों में दार्शनिकता अनायास सम्पृक्त हो जाती है।

व्याख्या

सिंहरण का कथन है—'मनुष्य बड़ा भयंकर है। वह समय आने पर राक्षस से भी अधिक कठोर, पशुओं की आदिम प्रवृत्तियों के समा-नान्तर पशु-प्रवृत्ति वाला, पत्थर की कठोरता से भी अधिक वज्र हृदय और निष्करुण हो जाता है। मनुष्य की अनिश्चित मनःस्थिति के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिये वह सोचता है कि मनुष्य को बीते दिनों में किये गये सुखों को भूल जाना चाहिये। भविष्य

में मिलने वाली प्राप्तियों के प्रति उदास रहना चाहिये। हाँ, उसे प्रयत्नशील रहना चाहिये वर्तमान के लिये। जो दिन, जो समय मनुष्य के ठीक सामने है उसे यथा-शक्ति सँवारना चाहिये।

वैशिष्टय

अ-'समानुभूति-सम्भव' राग का उद्रेक अलका के मन में हो चुका है। यह बड़े महत्व की बात है कि नायक के पूर्व ही 'पताका' के नायक के राग की उद्भावना नाटककार कर लेता है।

ब—सिंहरण की उक्ति में मानव के प्रति जो वितृष्णा है वह समष्टि-गत तो है ही, व्यष्टिगत भी है। सम्भवतः उसके सामने 'आम्भीक' का व्यक्ति-रूप अधिकेन मुखर है।

स—चरित्र-निर्माण की दृष्टि से भी इन पंक्तियों का विशेष महत्त्व है। सिंहरण का प्रेमिक किन्तु वीर और महत् उद्देश्य के लिये बलि-दान होनेवाला व्यक्ति-रूप यहाँ स्फुट किया गया है। अलका की सहानुभूति पा कर भी वह कुछ विपरीत तो नहीं; किन्तु, विशिष्ट ढंग से सोचता है। सिंहरण का आत्मविश्वास, मनुष्यों के विषय में एक निश्चित पूर्वग्रह, महान उद्देश्य के लिये सुखों का बलिदान इत्यादि उसकी व्यक्तित्व-मूलक विशेषतायें प्रकरण में विद्यमान हैं।

उपसंहार

दार्शनिकता, भावशबलता, आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति इत्यादि विशेषताएँ प्रकरण की शोभा हैं। 'प्रसाद' के पात्रों की दार्शनिक और भावुकतापूर्ण उक्तियाँ अक्सर प्रेमोद्रेक की अवस्था में ही स्फुट होती हैं। यह उद्रेक संयोग की अवस्था में कम, वियोग की अवस्था में अधिक तीव्र होता है। एक की पीड़ा को अनेक में आरोपित करने की विशेषता तो 'प्रसाद' के साहित्य में सर्वत्र विद्यमान रहती है। "आँसू"

का 'विश्वसदन'* और 'स्कन्द गुप्त' की 'देवसेना' की 'विदाई'ऽ में भावोद्रेक और दार्शनिकता का यही स्तर विद्यमान है।×

---

* सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात हिमकन सा
आँसू इस विश्व सदन में॥ 'आँसू' अन्तिम छंद

ऽ आह वेदना मिली विदाई।
मैंने भ्रमवश जीवन संचित,
मधुकरियों की भीख लुटाई। स्कंदगुप्त

×(१) सिंहरण ने तक्षशिला में अपने कार्यों के उपयुक्त परिस्थितियाँ नहीं पाईं। अतः उसने पञ्चनद में पर्वतेश्वर को यथेष्ट सहायता देकर यवनों के प्रतिरोध का निश्चय किया। सिकंदर के साथ पर्वतेश्वर के युद्ध में वह अपर'की सहायता करता हुआ स्वयं घायल हुआ। पर्वतेश्वर की पराजय से उसे ग्लानि हुई, किंतु वह हताश नहीं हुआ। उसने मालव में ही सैन्य-संग्रह कर सिकन्दर को वह पाठ पढ़ाया कि जगद्विजेता बनने का उसका सारा गर्व काफूर हो गया। वह एक साहसी, वीर और रण-कुसल सेनानी है। वह एक स्थल पर अलका से कहता है—

'अतीत सुखों के लिए सोच क्यों? अनागत भविष्य के लिए भय क्यों?'

—जगदीश प्रसाद दीक्षित : 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

(२) आम्भीक के क्रुद्ध हो जाने पर जब अलका उसकी रक्षा के लिए आशंकित हो जाती है, तब वह कहता है—

'अतीत सुखों के लिए सोच क्यों…'

(६) पिता का पता नहीं…शैशव की स्निग्ध स्मृति विलीन हो जा।
पृ० सं० ७०

पृष्ठभूमि

प्रस्तुत अवतरण जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। चाणक्य तक्षशिला से मगध लौट आता है। अपने घर जाता है। घर पर कोई नहीं है—शून्य! पिता की झोपड़ी का अवशेष एक लकड़ी का खम्भा भर बच गया है। उसकी स्मृतियाँ एक बार घूम जाती हैं। खम्भे में उसके बचपन के कितने ही पल जुड़े हैं। उसकी शैशव की प्रेमिका—शकटार की पुत्री सुवासिनी का भी पता नहीं है। इतने ही दिनों में समय ने सब कुछ बदल दिया है। प्रस्तुत अवतरण में चाणक्य की भावुक मनःस्थिति का विवेचन सँवारा गया है।

पल्लवन

चाणक्य लोक-श्रुति और ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर नितान्त कुटिल और कठोर व्यक्ति बताया जाता है। वह 'राजनीतिक-परुषता का साक्षात् प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। अभिप्रेत के लिये वह निंद्य और हृदय-हीन कार्य करने में ज़रा भी हिचकता नहीं। किन्तु भावुक कवि 'प्रसाद' की दृष्टि में वह अन्ततः मानव ही था। उसने जो कुछ किया उसके लिये उसे बड़ा संवरण करना पड़ा होगा। बड़ा दुःसह ताप सहना पड़ा होगा। मनुष्य ऐसे ही कठोर नहीं हो जाता। मानव की; प्रेम, क्रोध, सुख की इच्छा इत्यादि की सामान्य प्रवृत्तियाँ प्रत्येक व्यक्ति

उसका यह अटूट विश्वास कोई अकारण नहीं। वह वस्तुतः वीर है। पौरुष की आग उसकी रगोंमें बड़ी तीव्रता से प्रवाहित हो रही है। युद्ध के प्रति उसका आकर्षण नैसर्गिक है।

— विश्वनाथ : बैजनाथ

में समान रूप से विद्यमान रहती हैं। चाणक्य घर लौटने पर अपनी पुरानी स्मृतियों को दुहराने की चेष्टा कर रहा है जिसे समय और राज्य की कठोरता ने बुरी तरह धो दिया है, विकृत कर दिया है।

आलोच्य-विश्लेषण

चाणक्य घर आ गया है। टूटे घर को देखकर उसकी स्मृतियाँ निर्झर सी झर रही हैं। उसे झोपड़ी, प्रेमिका सुवासिनी और बचपन की क्रीड़ायें सब कुछ याद आ रही हैं। अपने प्रेम पर भी उसे विश्वास है। सुवासिनी का 'अभिनेत्री-कर्म स्वीकार' वह बुभुक्षा के कारण मानता है। उसे शकटार और अपने कुटुम्ब का विलयन याद आता है। उसके आक्रोश के नथने फूलने लगते है फिर—उसका आत्मविश्वास सजग हो उठता है और वह मगध को उलट देने की कठिन कल्पना करता है। उसकी कल्पना निश्चय की सीमा तक पहुँच जाती है। किन्तु उसके हृदय की उद्वेलित बाढ़ सहसा उतार पर आ जाती है और वह मात्र कृषक होकर ही जीना चाहता है। किसी महान निश्चय के पूर्व उठने वाला अन्तर्द्वन्द उसके मन में उठता है*। वह अपने घर की स्मृति के एकमात्र चिन्ह खम्भे को गिराकर एक प्रकार का मानसिक-सन्तुलन प्राप्त करना चाहता है—

यतकिञ्च प्रासंगिक

१—चाणक्य ने भी जीवन में प्रेम किया था। उसे भी नवयुवकोचित स्मृति की खुजली होती थी। लेकिन महान् लक्ष्य के लिये उसने

---

* 'राम की शक्ति पूजा' कविता में राम के अन्तर्द्वन्द का अत्यन्त सुन्दर चित्रण 'निराला' जी ने किया है। राम भी बड़ी और छोटी बातों के बीच इसी प्रकार झूलते हुये दिखाये गये हैं।

अपने स्नेह-वन में उद्देश्य की दावाग्नि लगा दी। उसकी सफलता का कारण यही तितिक्षा है।

२. चाणक्य के चरित्र का एक कोमल पक्ष भी है जिसे इन पंक्तियों में विवृत किया गया है। जिसपर आलोचक-प्रवर नन्ददुलारे वाजपेयी ने आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा "चाणक्य के जीवन में उसकी अति-मानवीय बौद्धिकता के साथ उसकी प्रेमवृत्ति को प्रदर्शित करने का प्रयोग भी किया गया है। इन विरोधी प्रवृत्तियों के बीच कलात्मक सामञ्जस्य पूरी तरह नहीं स्थापित हो पाया।*"

अन्त

जो भी हो चाणक्य के मानवी दौर्बल्य के दिग्दर्शन से चाणक्य का चरित्र अधिक स्फुट हुआ है। वह मात्र राजनीतिज्ञ अथवा नृशंस विचारक ही नहीं, प्रत्युत मानव भी है। मानव के साथ इतनी सहानुभूति न रखने पर कलाकार की संवेदनशीलता पर संदेह उठना चाहिए। प्रस्तुत प्रकरण चाणक्य के स्वभाव और उसके दौर्बल्य दोनों की सूचना देने के कारण महत्वपूर्ण है।

(७) समीर की गति अवरुद्ध है……एक बार स्वतन्त्र कर दो।

पृ० सं० ८७

प्रवेश

प्रस्तुत अवतरण 'प्रसाद' जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक से लिया गया है। प्रथम अंक के सातवें दृश्य का प्रारम्भ, बन्दीगृह में पड़े चाणक्य के अन्तर्द्वन्द से होता है। वह बन्दीगृह में विवश पड़ा है। सोचता है एक बार मुक्त हो जाता तो अपनी शक्ति के प्रदर्शन का अवसर मिल जाता।

---

* आधुनिक साहित्य पृ० २४८.

प्रस्तार

चाणक्य अपनी धृष्ट उक्तियों के कारण पकड़ लिया गया है। पद-दलित ब्राह्मणत्व की दुहाई देता हुआ वह बन्दीगृह में डाल दिया जाता है। बन्दीगृह में उसके चित्त में अन्तर्द्वन्द उठा हुआ है। वह उद्देश्य सिद्धि के लिये एक बार मुक्त हो जाना चाहता है लेकिन दीन होकर नहीं; आत्म-सम्मान के साथ। उसके मुखर-दर्प की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में सम्यक् रीति से हुई है।

व्याख्या

चाणक्य बन्दीगृह में पड़ा-पड़ा सोचता है—आज हवा भी शान्त है। निश्चल है। यह बेड़ियों में जकड़ा हुआ शरीर भी विवश पड़ा है। लेकिन शरीर के बँधने से मन तो नहीं बँधता। शरीर बँधा रहता है। मन चलता रहता है। इस बन्दीगृह से मुक्ति मिलती तो अपनी शक्ति के प्रदर्शन का मुक्त अवसर भी मिल जाता। शृंखला में उसके हाथ बँधे हैं। वह इन शृंखलाओं को सम्बोधन करता है—काश ! ये कड़ी बेड़ियाँ फूल की माला बन जातीं तो वह कामोन्मत्त युवक की तरह इसे तोड़कर सुखी हो जाता। [काम-क्रीड़ा के आरम्भ में प्रताड़न की भावना तीव्र हो उठती है। कामी फूल की माला आदि प्रसाधनों को मसलता है। दन्त-क्षत, नख-क्षत आदि क्रीड़ायें करता है।] फिर सोचता है कि क्या वह मुक्ति की भीख माँगे। रोने लगे—लेकिन, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकता।

वैशिष्ट्य उद्घाटन

(१) चाणक्य के मन का अन्तर्द्वन्द-चित्रण पंक्तियों का मुख्य अभिप्रेत है। उसके मन में संकल्प-विकल्प की तीन अवस्थायें उपस्थित होती हैं। प्रथम में आक्रोश और अपना सामर्थ्य-बोध है।

द्वितीय में एक सुकर कल्पना और रमणीक रूपक के माध्यम से मुक्ति की कामना है। तीसरे में उसका सुप्त पौरुष जागता है और वह रोकर अथवा भिक्षा के रूप में अपनी मुक्ति नहीं चाहता।

(२) चाणक्य के परुष चरित्र को अभिव्यक्त करने के लिये प्रस्तुत अन्तर्द्वन्द नितांत उपयुक्त है। इससे उसके व्यक्तित्व की कई बातें स्फुट होती हैं।

(३) भाषा प्राञ्जल है। भाव-प्रणवता, मन के उतार-चढ़ाव का सम्यक सम्पादन लेखक की मनोवैज्ञानिक दृष्टि की सूक्ष्मता के सूचक उपकरण प्रसंग में उपलब्ध हैं।

अन्त

चरित्र का स्पष्टीकरण, अन्तर्द्वन्द, मदोन्मत्त कामी का प्रतीक, स्वाभिमान इत्यादि विशेषतायें प्रकरण की शोभा हैं। कथा की विकासावस्था के कई लक्षण प्रस्तुत प्रकरण में दिखाई पड़ते हैं। किन्तु प्रकरण की मूल विशेषता चरित्र-उद्घाटन ही है।

(८) भिक्षोपजीवी ब्राह्मण·········ब्राह्मण से दैत्य बनना पड़ेगा।
पृ० सं० ८८

आधार

आलोच्य प्रसंग 'प्रसाद' जी के प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। वररुचि चाणक्य से, आमात्य राक्षस की आज्ञा मानने के लिये आग्रह करता है। राक्षस 'नन्द' का मंत्री होने के साथ ही बौद्ध भी है। दुहरे वैपरीत्य के कारण चाणक्य का ब्राह्मणत्व उद्वेलित हो उठता है और वह वररुचि को चाटुकार, भिक्षोपजीवी इत्यादि गर्हित विशेषण देकर अपना आक्रोश व्यक्त करता है।

प्रस्तार

चाणक्य ब्राह्मणत्व का दिव्य प्रतीक है। अपने ब्राह्मणत्व के लिये वह बड़ी से बड़ी यातना और बड़ी से बड़ी नृशंसता कर सकता है। बौद्ध आमात्य की आज्ञा मानने के परामर्श से उसका जी जल उठता है और मात्र विरोध ही (जिनका विरोध वह करना चाहता है) वह अपने जीवन का लक्ष्य बना कर अपने निश्चय की स्थापना करता है।

व्याख्या

चाणक्य वररुचि को दुत्कारते हुये कहता है—तुम्हें बौद्धों के साथ ने अब्राह्मण बना दिया है। ब्राह्मणोचित आत्म सम्मान का तुम्हारे अन्दर नितांत अभाव है। चाटुकार व्यक्ति की तरह हमें भी तुम अन्याय और पाप का समर्थक बनाना चाहते हो। यह वृत्ति विगर्हणीय है। मुझे जिनका विरोध करना है उनके विरोध के लिये मैं अपना रास्ता भी बदल सकता हूँ। ब्राह्मण से अब्राह्मण हो सकता हूँ। दुश्मन का विरोध मेरा मूल अभिप्रेत है।

स्पष्टीकरण

(अ) चारित्रिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रकरण का अत्यन्त अधिक महत्व है। चाणक्य का निश्चय, उसकी निर्भीकता का इतना भव्य रूप, प्रसाद के ही द्वारा सम्भव था। चाणक्य अपने 'ब्राह्मणत्व' पर किसी प्रकार की आँच नहीं लगने देना चाहता। जीवन की कठिनाइयों को झेलना वह शूर-धर्म मानता है। राक्षस के विरोध में उसकी उक्ति बड़ी शक्तिपूर्ण है। 'राक्षस' का अभिधार्थ लगाकर एक मार्मिक बात कहता है और अपने विरोधी में किसी भी प्रकार का परिमार्जन होने पर भी वह दया नहीं कर सकता। विरोध के लिये वह विरोध करना कर्त्तव्य समझता है, घोर असहिष्णु है वह।

(ब) 'राक्षस देवता हो जाय तो.........दैत्य बनना पड़ेगा' उक्ति में काव्यत्व है। राक्षस शब्द का अभिधार्थ लेकर वह पौराणिक कथा 'देवासुर संग्राम'* का आरोप अपने ऊपर करता है। नाटककार का नाट्य-कौशल और उदात्त-वाक्य लेखन की उसकी समर्थता यहाँ स्फुट हुई है।

(६) त्याग और क्षमा तप और विद्या.........दण्डनीति की आवश्यकता है।

पृ० सं० ८८

उपक्रम

वररुचि चाणक्य को ब्राह्मण-सम्भव सद्‌गुणों का स्मरण दिलाना चाहता है। किन्तु उग्र चाणक्य भी अपने महान ब्राह्मणत्व की ओर लक्ष्य करता है और धन और शक्ति के द्वारा दमित ब्राह्मणत्व को पुनः ऊपर उठाने की धारणा को भी व्यक्त करता है। ब्राह्मणत्व की महत्व-रक्षा के लिये शास्त्र और व्याकरण नहीं प्रत्युत डण्डनीति और अर्थ-शास्त्र को अधिक आवश्यक समझता है। इन पंक्तियों में चाणक्य का प्रतिवाद उद्धृत किया गया है।

प्रस्तार

चाणक्य का विश्वास है कि ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों ने जान-बूझ कर माया-स्तूप समझ कर धन और शक्ति दोनों ब्राह्मणेतर लोगों के हाथ में दे दिया है। किन्तु ब्राह्मण श्रेष्ठ है। विवश होने पर भी वह विनीत नहीं

---

* देवों और दैत्यों में सहज वैर था। दोनों जातियां वैर के लिये वैर करती थीं। चाणक्य अपना वैर, वैर के लिये मानता है। आमात्य के अदन्र आनेवाले सद्‌भाव को भी वह ग्रहणीय नहीं मानता।

हो सकता। वह सब कुछ नियन्त्रित करेगा। इसी धारणा का विवेच्य प्रकरण में प्रस्तार किया गया है।

व्याख्या

चाणक्य का कथन है—जो ब्राह्मण त्याग करता है, दूसरों के अपराध क्षमा कर देता है, अपने तप से अपनी मानवोचित कमजोरियों को दमित कर देता है और बड़ी कठोर साधना से विद्या अर्जित करता है, उस ब्राह्मण का महत्व भी तो होना चाहिये। ऐसे ब्राह्मण में तेज होता है। उसकी इन अप्रतिम शक्तियों का आदर होना चाहिये। संसार से उसका इतना दायाद्य तो अवश्य ही है। अगर ब्राह्मग को सामरिक शक्ति और आर्थिक दम्भ के द्वारा दबाया जाता है तो ब्राह्मण को प्रतिवाद करना चाहिये। ब्राह्मण की ही शक्ति से ब्राह्मणत्व का दमन अनुचित है। आज ब्राह्मणत्व की यही दशा है। इसलिये सच्चे ब्राह्मण का यही कतव्य है कि वह व्याकरण की साधना से पूर्व दण्डनीति और अर्थशास्त्र पर नियन्त्रण करे। भाषा ठीक करने के पहले आदमी को ठीक करे।

वैशिष्ट्य-कथन

(अ) ब्राह्मणत्व का चरम उत्कर्ष चाणक्य के व्यक्तित्व की मूल विशेषता है। जहाँ कभी उसके मन के विपरीत कुछ भी होने लगता है, उसका सुषुप्त पर सतत चेतन ब्राह्मणत्व जाग उठता है। 'ब्राह्मणत्व' उसके व्यक्तित्व का ऐसा वृहत् वृत्त है जिसके भीतर चाणक्य के व्यक्तित्व का सब कुछ अँट जाता है।

(ब) चाणक्य इस समय उत्तेजित है। उसकी उत्तेजना के अनुरूप भाषा और तथ्य देने में लेखक सफल हुआ है। चतुर्वर्ण श्रेठ ब्राह्मण क्यों शरीर और शक्ति में कम होने पर भी पूज्य और श्रेष्ठ माना

जाता रहा इस रहस्य का सम्यक उद्घाटन चाणक्य की इन उक्तियों के द्वारा हो जाता है।

(स) नाटकीय संघर्ष प्रारम्भ हो चुका है। वे सारी अन्तर्कलह की परिस्थितियाँ आरम्भ हो चुकी हैं जिनका परिणाम गृह-युद्ध और राज्य-परिवर्तन होता है। इस कथोपकथन के उपरान्त 'चन्द्रगुप्त' का प्रवेश कराकर लेखक संघर्ष को क्रियात्मक रूप दे देता है।

(द) चाणक्य के संवाद में तक्षशिला की शिक्षा के अनुरूप भाषा है। 'लोहे और सोने के सामने सिर झुकानेके लिये'—वाक्य में लक्षणा शब्द-शक्तिका व्यवहार हुआ है।

अन्त

नाटकीय संघर्ष की तीव्रता, ब्राह्मणत्व का महत्वांकन, चाणक्य के व्यक्तित्व की निर्भीकता इत्यादि कतिपय विशेषताओं को आलोच्य प्रसंग में सम्पुटित किया गया है। कथ्योन्वित भाषा और नाटकीयता का सम्यक निर्वाह करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है।

(१०) यह मेरी समझ में नहीं आता...... ....जो सुख होता है उसे भोग रहा हूँ।

पृ० सं० ८९

आरम्भ

आलोच्य प्रसंग, 'प्रसाद' जी के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। वररुचि जब 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' सूत्र को उद्धृत कर ब्राह्मण के शील का स्मरण दिलाता है तब चाणक्य का राजनीतिक मन्तव्य अपने आप वाणी में उतर आता है। वह मात्र दार्शनिक आदर्शों और चरित्रगत शील को ही उचित नहीं समझता। वह व्यवहार के औचित्य को आदर्श के औचित्य से अधिक महत्त्व देना उचित समझता

है। अपनी दृष्टि से व्यावहारिक आदर्श का मूल्यांकन करते हुए चाणक्य का व्यक्ति-रूप इन पंक्तियों में उभारा गया है।

प्रस्तार

चणक्य 'ब्राह्मणत्व' का गहन पक्षपाती था। वह ऊँच नीच के भेद से ऊपर उठना नहीं जानता था। आदर्श की अपेक्षा व्यवहार को अधिक मूल्य देना उसके व्यक्तित्व का मुख्य गुण है। कुत्ता, युवक, इन्द्र सबको समान स्तर पर ले जाकर देखने की आदर्शोक्ति को वह अव्यावहारिक और मूर्खतापूर्ण समझता है। लक्ष्य भी करता है कि नन्द के शूद्र-राज्य में कितना अनाचार है।

व्याख्या

चाणक्य 'श्वयुवमघोनामतद्धिते' सूत्र की आलोचना करते हुए कहता है कि उसकी दृष्टि में सामान्य और विशिष्ट का एकस्तरीकरण अव्यावहारिक है। जो श्रेष्ठ है उसे श्रेष्ठता के अनुरूप अधिकार और मान मिलना चाहिये। शूद्र और अश्रेष्ठ नन्द (व्यंजित अर्थ) के हाथ में राज्याधिकार जाने का कुफल आज राष्ट्र भोग रहा है। (शकटार और चाणक्य का पतन इस बात का प्रमाण भी है)

यत्किञ्च विशेष

१—चाणक्य अत्यन्तिक रूप से एक प्रतिभाशील और सूक्ष्म दृष्टि वाला समाज-द्रष्टा था। वह आदर्शों की परम्परा और शास्त्रोचित तथ्यों को जीवन के सत्य की कसौटी पर कसकर निर्णय देता था। वह, जो कुछ कहा गया है उसे नहीं प्रत्युत जो कुछ सुविचारित और व्यवस्थित है—उसे उचित मानता था। चाणक्य जीवन भर प्रयोग ही तो करता रहा—उसकी इस उक्ति में जीवन के व्यावहारिक पक्ष का अनुभूत ज्ञान स्फुट है।

२—चाणक्य के चरित्र-निर्माण में इन पंक्तियों का मौलिक महत्व है। उसका व्यक्तिगत आत्म-विश्वास बड़ी ऊँची भूमिका पर खड़ा दिखाई पड़ता है। चाणक्य जैसे महान पुरुष में ही इतना अधिक आत्म विश्वास हो सकता है। बन्दीगृह के सीखचों में बँधा हुआ मनुष्य जिसके हाथ में कोई भी अधिकार नहीं है यदि वह इस आत्म-विश्वास से बोलता है तो उसके आत्म-विश्वास के प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न होती है। चाणक्य के प्रति आस्था-वर्धन करने में इन पंक्तियों का जोरदार महत्व है।

उपसंहार

चाणक्य के आत्मविश्वास का स्पष्टीकरण और चरित्र-निर्माण इन पंक्तियों का मुख्य साध्य है। नन्द की निन्दित राज-व्यवस्था के प्रति चाणक्य का आक्रोश भलीभाँति स्पष्ट किया गया है। उत्तेजना और आत्मविश्वास के अनुरूप अहं; और अहं के अनुरूप कथन; और कथन के अनुरूप भाषा; प्रस्तुत करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है। सर्वतोभावेन प्रसंग सिद्ध है।

(११) ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि वैभव है........ संघटन कर लेगा।

पृ० सं० ९७

प्रवेश

प्रस्तुत अवतरण जयशंकर 'प्रसाद' के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' से अवतरित है। चाणक्य पर्वतेश्वर की राज्य सभा में जाकर नन्दों के उन्मूलन के लिये सैन्य-सहायता की याञ्चा करता है। लेकिन पर्वतेश्वर अपने आभिजात्य के दम्भ में मौर्यों को वृषल कह कर चाणक्य की इच्छा पर विस्मय प्रकट करता है। चाणक्य की इच्छा

के विपरीत एक विचार उठता है। उसका ब्राह्मणत्व दीप्त हो उठता है और वह ब्राह्मणत्व की शक्ति का एक बार स्मरण दिलाता है और अपने निर्णय की सार्थकता सिद्ध करना चाहता है। आलोच्य प्रसंग; ब्राह्मणत्व की परिभाषा और महत्वांकन करते हुए चाणक्य का संवाद है।

विवृति

चाणक्य मौर्यों के वृषलत्व का कारण बताते हुये स्पष्ट करता है कि मौर्य मूलतः क्षत्रिय हैं। बौद्धों के प्रभाव में आने के कारण इनका आभिजात्य कलंकित हो गया है। यदि उनमें कोई योग्य पात्र मिलता है तो उसका परिष्कार करके सुसंस्कृत बनाना तो ब्राह्मण के हाथ की बात है। ब्राह्मणत्व क्या है? उसे स्पष्ट करते हुए चाणक्य निवेदन करता है—

व्याख्या

ब्राह्मणत्व एक प्रकार का ऐश्वर्य है। किन्तु यह ऐश्वर्य धन का नहीं प्रत्युत बुद्धि का है। इसीलिये यह चिरन्तन है। (शाश्वत बुद्धि-वैभव का यही अभिप्राय है)—बुद्धि का विभव देशकाल की सीमा में नहीं बँधता इसी लिये सार्वभौम होता है*। ब्राह्मण का उपार्ज्य विवेक और ज्ञान है। बुद्धि-सम्पदा के कारण ब्राह्मण देश काल की सीमा से ऊपर होता है और प्रत्येक राष्ट्र, स्थान और व्यक्ति उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। ब्राह्मण चारो वर्णों में श्रेष्ठ है†। वह अपनी

---

* स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

† उस परम पुरुष का मुख ब्राह्मण है (ऋग्वेद—१० वां मंडल पुरुषसूक्त)

रक्षा के लिये क्षत्रिय की, पुष्टि के लिये वैश्य की और सेवा के लिये शूद्र की व्यवस्था करता है। ब्राह्मणेतर वर्ण ब्राह्मणों की अभाव पूर्ति के लिये होते हैं। ब्राह्मण ने ही वर्णों की रचना की है और विवेक के कारण अपनी श्रेष्ठता की स्थापना भी ब्राह्मण ने ही की है।

समीक्षा

(क) प्रस्तुत वाक्य एक प्रकार का सिद्धान्त-वाक्य है। स्मृति-युगीन वर्ण-धारणा के आधार पर इस वाक्य का नियोजन हुआ है। ब्राह्मण चारों वर्णों में श्रेष्ठ कहे गये हैं। चाणक्य के व्यक्तित्व में ब्राह्मणत्व की स्थापना करके लेखक पुनः-पुनः ब्राह्मण-सम्भव समग्र प्रचलित विचारों की उद्भावना चाणक्य के द्वारा कराता है। चाणक्य के अहं में कुछ सीमागत अतिचार नहीं है। उस समय का ब्राह्मण-साहित्य इस प्रकार के विचारों से भरा-पुरा है। लेखक ने तत्कालीन ब्राह्मण विचारधारा के आधार पर ही चाणक्य के व्यक्तित्व की कल्पना की है।

(ख) चरित्रगत दृष्टिकोण से उद्धरण पर दृष्टि-निक्षेप करने पर चाणक्य का अहं प्रकट होता है। आगे चलकर वह अपने को वशिष्ठ की श्रेणी का महर्षि समझते हुए कहता है कि 'भविष्य-निर्णय करेगा कि ऋषि किसे कहते हैं।' इस प्रकार चाणक्य का चरित्रगत आत्म-विश्वास उद्धरण में सम्यकरूप से व्यक्त हो पाया है।

(ग) 'ब्राह्मणत्व......बुद्धिवैभव है' वाक्य में परिभाषा की सामासिकता का उचित निर्वाह है। बहुत वाक्यों में कही जाने योग्य बात को एक ही वाक्य में बाँध दिया गया है। चाणक्य के व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा लिखने में लेखक ने कुशलता से काम लिया है। वाक्य का प्रत्येक शब्द वर्ण-द्वित्व से संयुक्त है जिससे उसके परुष

व्यक्तित्व और रुक्ष वाणी का अन्दाज हो जाता है। इतनी बारीकी से चरित्र-निर्माण हिन्दी में 'प्रसाद' के ही यहाँ उपलब्ध है।

अन्त

चाणक्य का अहं, ब्राह्मणत्व की परिभाषा, ब्राह्मण के अधिकार और श्रेष्ठता इत्यादि का सम्पादन उद्धरण में अच्छी प्रकार हुआ है। भाषा भावों को आबद्ध करने में सफल हुई है और विचारों को स्पष्ट करने की क्रम व्यवस्था भी समीचीन बन पड़ी है। सभी दृष्टियों से प्रकरण सिद्ध है।

(१२) जब आँधी और करका वृष्टि......तब रक्षा की क्या आशा!

पृ० सं०—१०१

आरम्भ

प्रस्तुत गद्यांश, जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'चंद्रगुप्त' से उद्धृत है। स्वदेश-प्रेम की साक्षात स्रोतस्विनी अलका घर छोड़ चुकी है। पिता से, भाई से, राजकीय ऐश्वर्य से, समस्त आकर्षणों से मुख मोड़ चुकी है। घूम रही है। देख रही है देश पर क्या गुजरने वाला है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अपने स्नेहपात्र सिंहरण से उसे आशा है। विश्वास है। किन्तु यवन-शिविर में सहसा वह चन्द्रगुप्त और चाणक्य का देख लेती है। चन्द्रगुप्त की कठिनाई और सिल्यूकस के स्नेह-दान का वृत्तान्त उसे ज्ञात नहीं है। इसलिए उसके आशा और विश्वास के दीपक पर संदेह का धुआँ उठने लगता है।

प्रस्तार

चन्द्रगुप्त प्यास के मारे बेहोश हो गया था। उसकी बगल में एक सिंह बैठा था। सिल्यूकस ने सिंह की हत्या कर चन्द्रगुप्त की प्राण-रक्षा

की और उसे अपने शिविर में ले गया। चंद्रगुप्त और सिल्यूकस की परस्पर वार्ता को अलका सुनती है। पूर्व वृतान्त ज्ञात नहीं है इसलिये चन्द्रगुप्त के प्रति उसके मन में सन्देह उठता है और सन्देह-जन्य निराशा उद्भूत है। विवेच्य प्रकरण में उसकी निराशा भरी उक्तियाँ संकलित हैं।

व्याख्या

अलका भारत देश की शांति और व्यवस्था को हरी-भरी खेती से उपमित करती हुई सोचती है कि बाहरी आक्रमणों की आँधी और आक्रमणकारियों के उत्पात की उपलवर्षा तथा क्लीव देशवासियों का शक्तिहीनता रूपी अनावृष्टि एवं अन्तर्कलह की दावाग्नि जल रही है तब देश की हरियाली रूपी शांति और सुव्यवस्था का नाश निश्चित ही है—बाहरी आक्रमण, आक्रमणजन्य उत्पात, देशवासियों की नपुंसकता तथा घरेलू अन्तर्कलहों का चतुर्संयोग आज देश में हो चुका है। ऐसी अवस्था में देश की शांति की रक्षा का उपाय दिखाई ही नहीं पड़ता। मन में एक तरह का प्रश्न उठता है लेकिन उसका समाधान सूझता नहीं। प्रश्न उठता है; निराशा के आकाश में जाकर खो जाता है। चन्द्रगुप्त जैसे विश्वासी और देशभक्त लोग भी यवनों के चक्कर आ चुके हैं। ऐसी परिस्थिति में स्वदेश की रक्षा का कोई उपाय नहीं बच गया है।

वैशिष्ट्य विवेचन

अ—प्रस्तुत प्रकरण की सबसे बड़ी विशेषता अलका का स्वदेश-प्रेम दिखाना है। उस निश्छल हृदय रमणी में अकूत देश-भक्ति है। चन्द्रगुप्त, चाणक्य और सिंहरण से ही उसे आशा है। चन्द्रगुप्त को इस अवस्था में पाकर उसकी आशा के बन्ध शिथिल हो जाते हैं और वह

पूर्णरूपेण निराश हो उठती है। देश को हरी भरी खेती कह कर उसने जो प्राकृतिक राग व्यञ्जित किया है वह नारी सुलभ और नितान्त मसृण है। देश कृषि प्रधान है। जमीन की हरियाली ही यहाँ की अधिकांश जनता की खुशी का कारण होती है। शांति और व्यवस्था को हरियाली से उपमित करने में एक प्रकार का स्वदेशी स्नेह है।

ब—आंधी, करका-वृष्टि, अवर्षण और दावाग्नि चार प्रतीक क्रमशः ब्राह्म आक्रमण, आक्रमणजन्य उत्पात, देशवासियों की उदासीनता और राज्यों के अन्तर्कलह के लिये आये हैं। ये प्रतीक अपनी सीमा में बहुत अच्छे बन पड़े हैं। हरी भरी खेती, देश की खुशी का प्रतीक है। सामान्य लोग कहा करते हैं कि अमुक बात की खुशी से 'मन हरा हो गया' इस तरह यह हरी भरी खेती देशवासियों के हरे भरे मन के लिये आया है।

स—'शून्य व्योम प्रश्न को बिना उत्तर दिये लौटा देता है' कथन में बड़ी व्यञ्जकता है। प्रश्न पूछा जाता है, जिससे पूछा जाता है उससे उत्तर मिलता है लेकिन ऐसा प्रश्न जिसका सुनने वाला कोई नहीं है बिना समाधान प्रश्न होकर ही लौट आता है। अलका के मन की समस्या का कोई समाधान नहीं सूझता। जिनसे आशा थी वह भी टूट गयी। उसकी निराशा की अभिव्यक्ति के लिये प्रस्तुत वाक्य नितान्त संगत है।

शास्त्रीय

१— नाटक का संघर्ष चरम सीमा की ओर बढ़ रहा है। कथानक विचित्र रूप से बिखर चुका है। सभी इधर उधर बिखर गये हैं। फलागम के पूर्ववाली अवस्था के सारे निराशा पूर्ण लक्षण आरम्भ हो गये हैं।

२—अलका का स्वगत-कथन मार्मिक और भाव की दृष्टि से सहज होने पर भी प्रतीकों की योजना के कारण सर्व-बोध्य नहीं है। फिर भी रोचकता में तनिक भी बाधा नहीं पड़ती। भाषा प्राञ्जल और लाक्षणिक है।

उपसंहार

आलोच्य प्रकरण अलका के चरित्र को काफी स्फुट करता है। उसका स्वदेश-प्रेम धन्य है जो किसी की अपेक्षा नहीं करता। हाँ, वह जिनसे आशा है उनके पतन से निराश अवश्य होती है लेकिन पथ-भ्रष्ट नहीं होती। प्रतीकों की योजना से प्रसंग का लालित्य-वर्धन हुआ है। सर्वतो-भावेन प्रसंग प्रसाद की गद्यशैली का आदर्श प्रस्तुत करता है।

(१३) भूमा का सुख और उसकी महत्ता का······नहीं अभिभूत कर सकते।

पृ० सं० १०३

आरम्भ

प्रस्तुत अवतरण 'प्रसाद' के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक के सातवें दृश्य से लिया गया है। सिकन्दर का दूत दाण्ड्यायन को सिकन्दर के पास ले जाने के लिये आया है। मनस्वी साधु की दृष्टि में सिकन्दर नगण्य प्राणी है वह उसके निमन्त्रण को सहज भाव से ठुकरा देता है। दूत के आग्रह पर वह सम्मान, लोभ या भय किसी भी शर्त पर जाने को तैयार नहीं होता। विवेच्य पंक्तियों में दाण्ड्यायन का जीवन-दर्शन गुम्फित है।

प्रस्तार

दाण्ड्यायन का दर्शन है कि मनुष्य को जागतिक वैभव का सुख

दुःख सत्य के अन्यथा ग्रहण के कारण ही होता है। ये समग्र सांसारिक प्रलोभन उन्हीं व्यक्तियों को आकृष्ट करते हैं जिनमें लोकेषणा का प्राबल्य रहता है। निवृत्त मार्गी योगियों के लिये संसार क्षण-क्षण पानी में पड़े गलते हुये लवण-खण्ड की तरह है। ये सारे प्रलोभन अज्ञान-जन्य हैं।

व्याख्या

दाण्ड्यायन की स्थापना है कि संसार के मनुष्यों को कामिनी, काञ्चन, यश, मान और अपमान की चिंता अज्ञान के कारण रहती है जिस व्यक्ति को उस अपरिमेय ईश्वर की महत्ता का पूर्ण बोध क्या मात्र छायात्मक आभास ही हो जाता है उसके लिये सब कुछ मिथ्या हो जाता है। कोई भी जागतिक आकर्षण उसके चित्त को प्रभावित नहीं कर पाता।

वैशिष्ट्य

अ—ऐतिहासिक साक्ष्य है कि सिकन्दर का साक्षात्कार एक भारतीय साधु से हुआ था जिसने अपनी प्रभावपूर्ण वृक्तृता और दार्शनिक मान्यताओं से सिकन्दर को पराभूत किया था। इसी तथ्य के आधार पर दाण्ड्यायन के व्यक्तित्व की कल्पना की गई है। किन्तु इस कल्पना में सत्य का सान्निध्य है। भारतवर्ष में अतीत काल से लेकर आज तक ऐसे निवृत्ति-मार्गी साधक होते रहे हैं जिन्होंने अपनी तितिक्षा और दार्शनिकता से संसार को सतत प्रभावित किया। ऐसे ऋषियों के यहाँ राजा प्रजा सबका बराबर सम्मान होता रहा। उपनिषद—वाङ्मय में ऐसे ऋषियों का अत्यन्त आधिक्य है।

(ब) दाण्ड्यायन की उक्ति में एक प्रचलित सामान्य दार्शनिक सिद्धान्त की योजना है। अद्वैतवादी दर्शन के अनुसार उसी एक ब्रह्म

के ये सब जागतिक उपकरण आभास हैं। यह संसार सत्य नहीं प्रत्युत सत्य-बोध कराने का एक उत्स है। सांसारिक क्षणिकता के आधार पर उस महान चिर अविनश्वर की कल्पना बुद्धि में अँटती है।

(स) इस उक्ति में दाण्ड्यायन का व्यक्तित्व स्फुट किया गया है। वह निर्लिप्त भाव से सिकन्दर के निमन्त्रण का अपमान करता है। इससे उसकी निर्भिकता, संसार की गति-अगति के प्रति निरपेक्षता इत्यादि निवृत्ति मार्गी साधकों की विशेषताओं का उद्घाटन होता है।

शास्त्रीय

१—दाण्ड्यायन का प्रस्तुत प्रसंग 'प्रकरी' अर्थप्रकृति के अन्दर आता है। यह एक ऐसा प्रसंग है जो कथा को तनिक प्रसार देकर कतिपय बिखरे कथा-सूत्रों को जोड़कर समाप्त हो जाता है।

२—सूत्र की भाषा दार्शनिक ढंग की एवं उपदेशात्मक है। दार्शनिक संकेत-शैली की पदावली का व्यवहार किया गया है। 'उसकी' शब्द उस अपरिमेय ब्रह्म के लिये आया है।

अन्त

सूक्ति में दाण्ड्यायन का व्यक्तित्व भली प्रकार स्फुट हुआ है। तथ्य और तथ्य के अनुरूप भाषा का मणिकाञ्चन योग है। सूक्ति को अलग से उपदेशार्थ जहाँ कहीं भी उपस्थित किया जा सकता है। प्रसाद सूक्ति-लेखन की कला में पारंगत थे।*

---

* १—'चंद्रगुप्त' नाटक में दांड्यायन ही ऐसा पात्र है, जो अपने पूर्ण विकसित रूप में रंगमच पर अवतरित हुआ है। उसका चरित्र पूर्णतः स्थिर है, क्योंकि वह सारे लौकिक सम्बन्धों को त्याग कर आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश कर चुका है।

(१४) समस्त आलोक, चैतन्य और प्राणशक्ति·········अधिकार नहीं हो सकता।

पृ० सं०—१०३

आरम्भ

प्रस्तुत अंश, जयशंकर प्रसादजी के प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। यवन दूत दाण्ड्यान से सिकन्दर के उपस्थित होने का

दांड्यायन प्राचीन भारत के द्रष्टा ऋषियों का प्रतिनिधि है। प्रथम प्रवेश में वह कुछ असम्बद्ध सी बातें कहता हुआ मंच पर आता है, किन्तु उन बातों में जगत् के अस्तित्व की व्याख्या है, जो स्वभावतः किसी तत्ववेत्ता के स्वगत-भाषण का विषय हो सकती है। दार्शनिकता या आध्यात्मिक पहुँच के कारण भय-मिश्रित श्रद्धा का आलम्बन बनने में ऐसे महात्माओं के विषय में प्रचलित धारणा यह है कि वे व्यवहार में साधारणतः रुक्ष हुआ करते हैं। दांड्यायन ने भी सिकन्दर के दूत को अकारण ही डाँट दिया है। इस रुक्षता का कारण यह है कि दांड्यायन या ऐसे ही तत्ववेत्ता ऋषियों को जिनका चरम लक्ष्य 'भूमा का सुख' प्राप्त करना है, संसार के नश्वर चमकीले प्रदर्शन 'अभिभूत नहीं कर सकते। दांड्यायन ने आत्मा के रहस्य को समझ लिया है। आत्मा स्वतंत्र है, बन्धनहीन है; उसे कोई लौकिक शक्ति नहीं दबा सकती। इसलिए प्रभु के अतिरिक्त दूसरे का शासन कैसा ?

—विश्वनाथ : वैजनाथ

२—विषमता की पीड़ा से ग्रस्त
हो रहा स्पन्दित विश्व महान
यहीं सुख दुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

—कामायनी

आग्रह करता है। दाण्ड्यायन इस निमन्त्रण की उपेक्षा करता है। दूत किञ्चित-चञ्चल होकर भय देना चाहता है और सिकन्दर की ओर से मिलनेवाले दण्ड की ओर संकेत भी करता है। दाण्ड्यायन इस प्रसंग की भी सहज भावसे अवहेलना करता है जैसे यह कुछ है ही नहीं। दाण्ड्यायन अपने जीवन-दर्शन और जीवन-चर्या की चर्चा करता हुआ आत्मा के अमरत्व और शरीर की नश्वरता की बातें कहता है।

प्रस्तार

दाण्ड्यायन एक दार्शनिक है। लोकैषणा से विरक्त पुरुष है। जीवन की सामान्य आवश्यकतायें उसके लिये नगण्य हैं। वह आत्मदीप्त है। आत्मा की अमरता का विश्वासी है। नश्वर शरीर के लिये न उसे मोह है न वह इस नश्वर शरीर के लिये अविनश्वर आत्मा पर ठेस पहुँचने देना ही उचित समझता है। यवन-दूत के द्वारा भयभीत करने की चेष्टा होने पर वह तनिक विचलित नहीं होता। वह सब कुछ का कर्ता-धर्ता ईश्वर को ही मानता है। मनुष्य की शक्ति को वह एक क्षीण तन्तु मात्र मानता है जो काल के झटके से जब कभी भी टूट सकती है। विवेच्य प्रकरण में ईश्वर-शक्ति के प्रति उसका विश्वास, मनुष्य की असमर्थता के प्रति उचित वितृष्णा, गहन स्वाभिमान और निर्भीकता इत्यादि उसकी चरित्रगत विशेषतायें उभारी गयी हैं।

व्याख्या

दाण्ड्यायन ईश्वर को एकमात्र शासक मानता है। सिकन्दर की सामरिक शक्ति को उपेक्षित समझता है और अपने जीवन-दर्शन का स्पष्टीकरण करते हुये कहता है—इस सृष्टि में जितना भी प्रकाश (अर्थात् चाँद, सूर्य और नक्षत्र) है, जितनी भी चेतना (बुद्धि) है और जड़-चेतन में जितनी भी जीवनी-शक्ति है सब कुछ उसी एकमात्र शक्तिनिष्ठ

भगवान के माध्यम से ही है। सृष्टि के समस्त उपकरण उसी भगवान की माया के विस्तार हैं। ईश्वर ही शरीरियों को जीवन-शक्ति देता और युत समय पर जब चाहता है, मृत्यु के द्वारा अपना दिया हुआ दान वापस ले लेता है। मनुष्य बड़ा असमर्थ है। वह किसी को जीवन-शक्ति नहीं दे सकता इसलिये यदि वह किसी की प्राण-हत्या करता है तो महान अपराध करता है। जिस चीज को जो बना नही सकता उसे बिगाड़ने का उसे क्या अधिकार है। यदि मनुष्य काल और नियति तथा ईश्वरीय शक्तियों के अज्ञान के कारण ऐसा कुकृत्य करता है तो वह दोषी है।—जिन लोगों ने भगवान को महत्त्व को समझ लिया है उन्हें सांसारिक आकर्षण नहीं खींचते। वे सब कुछ से विरक्त होकर संसार की भीड़ से अलग होकर साधना का एकान्त-जीवन बिताते हैं। फल-मूल इत्यादि जगली वस्तुओं से बुभुक्षा को शांति करते हैं। पात्र की ओर से निरपेक्ष होकर हाथों से जल ग्रहण करते हैं। सुख साधन की वांछा नहीं रखते। भगवान की दी हुई ऊँच-नीच धरती पर सो जाते है। इसी तरह जीवन बिता देते हैं। मैं (दाण्ड्यायन) इसी प्रकार का प्राणी हूँ। यदि यवन-दूत हमें हमारी इच्छा के विरुद्ध देव-पुत्र के यहाँ उपस्थित करना चाहेंगे तो जीते जी ऐसा नहीं कर सकते। मृत शरीर को हस्तगत कर सकते हैं। स्वतन्त्र आत्मा तो सदैव मुक्त है।

वैशिष्ट्य

(अ) भारतीय विरक्तों का सामान्य दार्शनिक विश्वास दाण्ड्यायन के द्वारा अभिव्यक्त कराया गया है। आत्म-विश्वास और आत्मसन्मान के लिये शरीर-विसर्जन का उसका निश्चय प्रकरण का मुख्य आकर्षण है।

(ब) दाण्ड्यायन की भाषा में बड़ी सहजता निबाही गई है। वह अपने सिद्धान्तों के प्रति जितना अडिग मन है उतने आग्रह से वह देव-दूत का स्पष्ट तिरस्कार नहीं करता। वह बड़े निरपेक्ष भाव से उन मनुष्यों को दम्भी कहता है जिनमें ईश्वर का विश्वास नहीं है और जो मानव की सीमित शक्ति को ही शक्ति का चरम उत्कर्ष मान बैठे हैं। दाण्ड्यायन की उक्ति में ऐसे भ्रष्ट-भ्रष्ट मनुष्यों के दोष के प्रति भी कोई आग्रहपूर्ण आक्षेप नहीं है। वह सब कुछ बड़ी विरक्ति से, बड़े सहज ढंग से टाल जाता है। और अपना निश्चय जीवन-स्थायित्व तक स्थिर मानता है। यह है व्यक्तित्व !!

समीक्षा

नाटकीय रस-संचार अथवा कथा-प्रसार में इस प्रकरण का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। सिकन्दर को भारतीय ब्राह्मण के प्रभावशाली व्यक्तित्व से पराभूत होना पड़ा था—इसी ऐतिहासिक साक्ष्य के निर्वाह के लिये नाटक में इस प्रसंग की योजना की गई है। तथ्य के अनुरूप भाषा,लेखन की शक्ति को लेखक ने आयत्त किया है।

(१५) जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे······केवल विजयों से नहीं।
पृष्ठ संख्या १०५-६

आरम्भ

प्रस्तुत अवतरण 'प्रसाद' के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। सिकन्दर दाण्ड्यायन के यहाँ जाकर विजय के आशीर्वाद चाहता है। दाण्डायन का उत्तर ही प्रतिपाद्य है।

विस्तार

दाण्ड्यायन एक विरक्त साधु है। उसे सांसारिक जय-विजय से क्या लाभ? वह सिकन्दर की विजय-तृष्णा को तिरस्कार-भावना से देखता हुआ वास्तविक राज-धर्म की प्रेरणा देता है। दाण्ड्यायन की वाणी की शक्तिमत्ता का प्रभाव सिकन्दर पर पड़ता है। प्रस्तुत प्रसंग में दाण्ड्यायन का कथन उद्धृत किया गया है।

व्याख्या

जय का आशीर्वचन माँगने पर दाण्ड्यायन उत्तर देता है कि जय की घोषणा साधु और विरक्त नहीं किया करते यह तो राज्य-पोषित चारणों और भाटों का ही काम है। किसी भी साधु को सामरिक प्रक्रिया में आनन्द नहीं मिलता। इससे निष्प्रयोजन हत्यायें और अनाचार हुआ करते हैं! सामरिक तैयारी से साधु को हर्ष नहीं होता। विजय करने की लोकेषणा प्रायशः विपरीत फल ही दिया करती है। राजा का कर्त्तव्य राज्य की सुव्यवस्था करना है विजय करना नहीं। युद्ध तो रक्षा के लिये अभिहित है। राज्य-सत्ता की वास्तविक उन्नति सुन्दर व्यवस्था और प्रजा-धर्म के पालन से होती है।

वैशिष्ट्य

दाण्ड्यायन नितान्त निर्भीक और स्पष्ट-भाषी साधु हैं। अलक्षेन्द्र जैसे वीर के आने जाने से उनपर कोई असर नहीं पड़ता। पूछता हैं तो उसे सुमार्ग की ओर लक्ष्य कर देते हैं लेकिन अपनी आज्ञा-पालन के लिये वे किसी प्रकार आग्रह नहीं करते। दाण्ड्यायन का व्यक्तित्व इन पंक्तियों में भली प्रकार स्फुट हुआ है।

उपसंहार

दाण्ड्यायन का निर्भीक व्यक्तित्व, निर्भीकता के अनुरूप भाषा में अनुरूप भाव, प्रकरण की सिद्ध विशेषता है। अलक्षेन्द्र को प्रेरणा देने के लिये जो वाक्य दाण्ड्यायन ने कहा है उसमें उसकी दृष्टि की सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। युद्ध के कुसंस्कारों और कुफलों को दाण्ड्यायन भली प्रकार समझता है। नाटक से मिलने वाले अनेक संदेशों में प्रस्तुत वाक्य भी एक संदेश ही है जिसका महत्त्व अपनी सीमा में सर्वाधिक समझा जाना चाहिये।

———

—द्वितीय अंक—

(१६) सेनापति ! देखो उन कायरों को रोको·········मरने का क्षण एक ही है।

'पृ० सं०—१२४

आरम्भ

प्रस्तुत गद्यांश 'प्रसाद' जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य से लिया गया है। सिकन्दर का आक्रमण हो चुका है। महावीर पर्वतेश्वर की सेना उखड़ रही है। पर्वतेश्वर सिल्यूकस को घायल कर देखता है कि सेना की स्थिति पलायन की ओर है। अपने सेनापति का आमन्त्रण कर सैनिकों को रोकने के लिये उत्तेजक प्रेरणा देता है। पर्वतेश्वर का, सैनिकों के प्रति सम्बोधन, अपना विवेच्य है।

प्रस्तार

पर्वतेश्वर की सेना पलायन कर रही है। वह सेनापति से कहता है कि किसी प्रकार सैनिकों को रोको। वह अपनी सेना को उत्तेजित करने के लिए यथा सम्भव सारी उत्तेजक सामग्री का उपयोग करता है। पर्वतेश्वर का पौरुष और उत्साह इन प्रेरक वाक्यों में भली प्रकार स्फुट हुआ है।

व्याख्या

पर्वतेश्वर सैनिकों को सम्बोधन करते हुए कहता है—'सेनापति ! अपने सैनिकों से कह दो कि यह कायरता का समय नहीं है। मैं अपने नाम का याथार्थ्य सिद्ध करने के लिए पर्वत की तरह अचल रहूँगा। विजय-श्री मेरा अभिप्रेत नहीं है। मेरा अभिप्रेत भारतीय पौरुष की सम्मान-रक्षा है। मैं चाहता हूँ कि विजयी होने पर भी इन यवनों में भारतीय सैनिकों की शक्ति का आतंक रहे। युद्ध की हार से मर्यादा की हार बड़ी होती है। सारी प्रतिकूलताओं के बावजूद भी मैं अडिग रहूँगा। प्रकृति भी यदि विपरीत हो जायेगी तो मैं निश्चय से विरत नहीं होऊँगा। क्रुद्ध प्रकृति के प्रतीक ये बादल यदि वज्र-वर्षा करें तब भी, हाथियों की सेना नष्ट हो जाय तब भी; रथचालकों का रथ टूट जाय तब भी,* सारा शरीर छिन्न भिन्न हो जाय तब भी, मैं भारतीय योद्धाओं के सामरिक-कौशल की मर्यादा की रक्षा करूँगा। अन्त में अपने व्याख्यान की भाषा में तीव्रता और प्रेषणीयता का आरोप करते हुए पर्वतेश्वर का निवेदन है कि—धर्मयुद्ध में प्राण-भिक्षा माँगना निंद्य और गर्हित कर्म है। भारत-माता और अपनी माता के स्तन्य की लज्जा की रक्षा करने के लिये तो कम से कम हमारे सैनिक एक बार पुनः अपने उत्साह का परिचय दें। मृत्यु एक निश्चित सत्य है और किसी न किसी दिन वह होकर ही रहेगी। इसलिये यदि युद्ध-भूमि में उन्हें स्वर्ग प्राप्त होता है तो हानि क्या ?

वैशिष्ट्य

(१) पर्वतेश्वर का व्याख्यान बड़ा मार्मिक और प्रेरक है।

---

* रावण रथी विरथ रघुवीरा। (सम्भवतः इन शब्दों की प्रेरणा प्रसाद को तुलसी से मिली होगी।)

युद्धभूमि में इस प्रकार की प्रेरणा मिलने पर ही सैनिक जीवन-मृत्यु से खिलवाड़ किया करते हैं। प्रेरक तथ्य के साथ ही तथ्यानुरूप भाषा प्रस्तुत करने में लेखक को असाधारण सफलता मिली है। पर्वतेश्वर का पूरा व्यक्तित्व सामने उभर आता है। स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार वह खड़ा है, किस प्रकार ललकार रहा है, कैसे-कैसे भाव उसके उत्तेजित मुख पर उतर-चढ़ रहे हैं। प्रस्तुत गद्य से पर्वतेश्वर के विचारों का अर्थ ग्रहण या मात्र भाव-ग्रहण नहीं प्रत्युत बिम्ब-ग्रहण होता है।

(२) पर्वतेश्वर का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इन वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है। प्रथम के चार वाक्यों में उसका भारतीय गौरव के प्रति स्नेह, पाँचवें में उसका अप्रतिम उत्साह, छठवें में आत्मसम्मान, सातवें में कायरों के प्रति तिरस्कार-भाव और उनको जाग्रत करने को समर्थ प्रेरणा देने शक्ति का परिचय मिलता है।

(३) 'जननी के स्तन्य की..........मरने का क्षण एक ही है' वाक्य में बड़ी प्राण-शक्ति है। नपुंसक हृदयों को भी एकबार फड़का देने की शक्ति अगर वाणी में सम्भव है तो उसका आदर्श रूप इस वाक्य में देखा जा सकता है।

अन्त

नाटक का संघर्ष चरम सीमा पर है। नाटकीय अन्तर्द्वन्द का प्रारम्भ और उत्कर्ष अपनी निश्चित सीमा तक हो चुका है। इस घटना के पश्चात् नन्द के पतन के साथ नाटकीय सन्धि गर्भ की अवस्था पर पहुँच जायेगी। यहाँपर Rising action (संघर्ष Crisis) की ओर उन्मुख हो चुका है। लेखक ने व्याख्यान के अनुरूप प्रेरणा देनेवाली

भाषा-शक्ति को आयत्त किया है। उत्तेजकता और प्रेरणा प्रसंग का मुख्य अभिप्रेत और मुख्य सिद्धि है । *

---

(१७) फूल हँसते हुए आते हैं......सब के लिए एक ही नियम तो नहीं ।

पृ० सं०—१२७

---

* (१) सिकन्दर के साथ एकाकी युद्ध में वह निस्सन्देह क्षत्रियोचित उत्साहपूर्ण वीरता और साहस का परिचय देता है। हाथियों के प्रत्यावर्तन से हतोत्साह न होकर वह अपने सेनापति को आज्ञा देता है—'सेनापति देखो, उन कायरों को रोको। उनसे कह दो कि आज रण-भूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है' ।

—जगदीश प्रसाद दीक्षित : 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

(२) पर्वतेश्वर में केवल मिथ्याभिमान का खोखलापन ही नहीं, वीरता और साहस भी हैं। आर्य्यावर्त के अन्य नरेशों की सहायता नहीं मिलने पर भी वह विश्व-विजय के स्वप्न-द्रष्टा सिकंदर से युद्ध करता है। युद्ध में दुर्भाग्यवश हाथियों के प्रत्यावर्तन से जो विषम स्थिति हो गई है, उससे अविचलित रह कर सैनिकों को ललकारना और जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर उन्हें युद्ध में प्रवृत्त करना उसकी सैन्य-संचालन-पटुता का द्योतक है।

सारी बाधाओं को झेल कर पर्वतेश्वर रणभूमि में 'पर्वत की तरह अचल' रहता है ।

—विश्वनाथ : बैजनाथ

प्रारम्भ

प्रस्तुत अंश जयशंकर 'प्रसाद' विरचित प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्य-कृति 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। प्रस्तुत स्थान पर नाटक की सर्वाधिक मसृण और सुकुमार पात्रा मालविका की भावुक स्नेहोक्तियों का सञ्चयन किया गया है। मालविका एक तरुणी मालिन है। फूलों के बीच रहने के कारण उसका मन भी फूल की तरह स्निग्ध और कोमल है। फूलों के खिलने और झरने के माध्यम से संसार के दुःख-सुख के क्रम पर विचार करती हुई मालविका का स्नेह चन्द्रगुप्त से हो जाता है। दर्शन-जनित पूर्वराग हो चुका है। उसकी उक्तियों में एक प्रकार की टीस है, सम्भवतः प्रेम का उदय हो रहा है इसी कारण।

प्रस्तार

सिंहरण के उद्यान की मालिन मालविका चन्द्रगुप्त के रूप-वैभव से आक्रान्त हो चुकी है। उसे अकेलापन सुहा नहीं रहा है। एक टीस सी उठती है। विचारों में अनायास दार्शनिकता सम्पुटित हो जाती है।

व्याख्या

मालविका सोचती है—संसार में फूल (पुष्प की भाँति कोमल और क्षीण जीवन तन्तु वाले पदार्थ) आते हैं। उनका जीवन छोटा होता है; लेकिन उनके आगम के साथ खुशी और सौंदर्य का आगम होता है। फूल अपने पराग-केशर को कुछ क्षणों तक थामे रहते हैं। जीवन का क्षीण तन्तु कब तक सँभलता! पराग झड़ जाता है। फूल सूख जाता है। [इसी प्रकार संसार की सभी सुकोमल और सुन्दर वस्तुओं का शीघ्र अन्त होता है। सुन्दरता अपने आप में एक दुर्बलता है···काल के कठोर झटके से सब कुछ टूटता रहता है] लेकिन ये

झरने वाले फूल;—बहुत कम दिन संसार में टिकने वाला सौंदर्य; पृथ्वी को, प्रभावित करता है। इसी प्रकार कोमल और स्पर्श-सुखद वायु का झोंका आकर एक दर्द खींचकर खतम हो जाता है (जीवन में जो सहज और प्रिय होता है अक्सर जल्दी नष्ट हो जाता है)। इन सबसे प्रश्न उठता है कि क्या संसार, यातना की भूमि है? है; लेकिन उसका अपवाद भी है।

वैशिष्ट्य

अ—'मालविका' नाटक की अत्यन्त कोमल पात्रा है। फूल की ही तरह आकर्षक पर क्षणिक उसकी जीवन लीला है। चंद्रगुप्त से प्रभावित होती है। और चद्रगुप्त की रक्षा के लिये सुकुमार भावुकता से अभिभूत होकर अपना जीवन-क्रम ठहरा लेती है। 'प्रसाद' के लगभग सभी नाटकों में मालिन नायिकाओं की योजना है। प्रत्येक मालिन कल्पना-प्रवण और भावुक होती है। जीवन की कठोरता और घात-प्रतिघात का इनके अन्तर्गत अभाव रहता है। सहज-समर्पण इनके व्यक्तित्व का मुख्य अंग है। संभवतः यौन-क्रियाएँ भी 'प्रसाद' के नाटकों में मालिन पात्राओं के द्वारा हो संपादित की गई हैं। 'प्रसाद' के नारी की मुख्य विशेषता है कि वे मन तो प्रथम दर्शन में ही देती हैं लेकिन तन देने में अन्त तक उनका संकोच संवृत नहीं हो पाता। इन मालिनों में तन-मन-समर्पण दोनों है। 'सुरमा' (ध्रुवस्वामिनी) इसी स्तर की नारी पात्रा है।

ब—'एक को तो देखते ही डर लगता है' उक्ति में उसके प्रेमोदय के लक्षण-सूत्र विद्यमान हैं। फूलों की हँसी, मकरन्द का पतन और धरती पर इसके चिह्न की बातें करती है। यह प्रतीक उसके स्वतः के जीवन पर अधिक सटीक बैठता है। वह स्वतः फूल की तरह प्रेम के मकरन्द से भरी हुई सुन्दरी है। लेकिन नायक की स्नेहपात्रा होने पर भी 'फलाप्ति' के पूर्व

ही सुकुमारता भावुकता-वश समाप्त हो जाती है लेकिन चन्द्रगुप्त की ममता और स्नेह की धरती पर उसका चिह्न तो छूट ही जाता है। उसकी मृत्यु की सूचना से चन्द्रगुप्त के मुख से 'आह! मालविका!!' की पीड़क उक्ति निकल जाती है। इस प्रकार मालविका की यह उक्ति उसके जीवन पर इतने सफल ढंग से उतरती है कि लेखक की कला पर विस्मय हो उठता है!

शास्त्रीय किञ्चित

मालविका का कथा-सूत्र 'प्रकरी' 'अर्थ-प्रकृति' के अन्तर्गत आता है। नायक की जीवन-रक्षा और नायक के जीवन को सरस बनाने के लिए इस व्यक्तित्व की योजना की गई है। प्रस्तुत दृश्य की योजना मालविका और चन्द्रगुप्त के स्नेह को जोड़ने के लिये ही होती है। अन्त में वह कहती है 'स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है किन्तु फिसलने का भय भी रहता है!"

समीक्षा

प्रस्तुत प्रसंग प्रतीकात्मक है। नारी के हृदय में अंकुरित होने वाले स्नेह के कारण उक्तियों में; एक भावुक दार्शनिकता सन्निविष्ट है। भाषा और भाव की सहजता का सम्यक निर्वाह हुआ है। प्रसंग मष्तिष्क को प्रभावित ही नहीं करता प्रत्युत हृदय को भी छूता है। प्रसंग सर्वतोभावने सिद्ध है।

———

—तृतीय अङ्क—

(१८) ब्राह्मण राज्य करना नहीं जानता..................राजा बनाना जानता है।

पृ० सं०—१५७

आरम्भ

'प्रसाद' जी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'चंद्रगुप्त' के तृतीय अंक से प्रस्तुत अंश अवतरित है। पर्वतेश्वर चाणक्य की कूटनीति से खिन्न हो जाता है। कल्याणी आत्म-हत्या कर लेती है। चन्द्रगुप्त सम्राट हो जाता है। चारों ओर से गहन निराशा, पर्वतेश्वर के मन को आक्रान्त कर लेती है। जैसा कि अक्सर 'प्रसाद' के नाटकों में होता है, यहाँ भी निराशा का अन्त जीवन के अन्त के द्वारा पर्वतेश्वर करना चाहता है। चाणक्य ऐन मौके पर आता है। रोकता हैं। पर्वतेश्वर के लिये महान् उद्देश्य की बातें बताता है। चन्द्रगुप्त के आभिजात्य की स्वीकृति लेता है और अपने ब्राह्मणत्व का अहँ व्यक्त करते हुये पर्वतेश्वर से अतीत के अपमान का बदला सा लेता है। पुनः उसे दे कर कृतज्ञ बनाता है।

विवृति

ब्राह्मणत्व चाणक्य के व्यक्तित्व की मूल विशेषता है। जहाँ भी दुःख या संतोष कुछ भी मिलता है उसे ब्राह्मणत्व याद आता है। 'ब्राह्मणत्व'

उसका आदर्श ही नहीं प्रत्युत 'रेलिजन' भी है। पौरव जब चाणक्य से चन्द्रगुप्त का आभिजात्य स्वीकार लेता है तब आत्म-तोष के गौरव से उसका वक्ष प्रफुल्ल हो उठता है। वह अपनी शक्ति के विश्वास से किञ्चित अहमन्य सा होकर बोलता है। पर्वतेश्वर के पात्रत्व में उसे सन्देह नहीं है। उसे वह राजा बनाये रखना चाहता है। लेकिन अपनी कृतज्ञता का भार लादते हुए—

व्याख्या

चाणक्य का कथन है—ब्राह्मण चतुवर्ण में श्रेष्ठ है। राज्य-संचालन क्षत्रिय का धर्म है ब्राह्मण का काम मन्त्रणा देना और व्यवस्था करना है। ब्राह्मण राज्य-संचालन की कला से अनभिज्ञ न होने भी राज्य-संचालन नहीं करता। वह अपनी श्रेष्ठता और बुद्धि सम्पदा से राजाओं का मार्ग-दर्शन करता है। पथ भ्रष्ट-शासक का नियमन भी करता है। ब्राह्मण का कार्य बनाना है पथ पर चलना नहीं।

वैशिष्ट्य

ब्राह्मणत्व चाणक्य के व्यक्तित्व का सीमा-वृत्त है। वह किसी भी प्रकार की सिद्धि या सफलता को अपनी नहीं अपने ब्राह्मणत्व की सिद्धि मानता है। नाटक में, बार-बार उसका ब्राह्मणत्व, ब्राह्मण होने का अहं दुहराया गया है। ब्राह्मणत्व की अतिव्याप्ति के कारण उसके प्रति उत्पन्न आस्था एक प्रकार से कठोरता में बदलने लगती है और इस प्रातिभ आदमी का एक रूढ़ रूप ही सामने रह जाता है जिसमें न कोई आकर्षण है, न स्नेह, मात्र श्रद्धा-श्रद्धा !

---

(१६) नहीं चन्द्रगुप्त मुझे उस देश में जन्मभूमि के समान······ मानवता की जन्मभूमि है।

पृ० सं०—१६०

आरम्भ

नाटक की नायिका (?) कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त से प्रेम हो चुका है। वह भारत की संस्कृति और शिक्षा का भी पूर्ण बोध कर चुकी है। किसी न किसी रूप में वह भारत में रहना चाहती है पर उसकी आशा टूट चुकी है। सिल्यूकस के स्थान पर फिलिप्स देश का क्षत्रप नियुक्त हुआ है। प्रस्तुत स्थल पर वह चन्द्रगुप्त से आलाप कर रही है। भारतवर्ष के प्रति उसका आकर्षण राग में प्रतिष्ठित हो चुका है। उसके राग की सहज-व्याख्या आलोच्यांश का अभिप्रेत है।

प्रस्तार

आचार्य शुक्लने एक स्थान पर लिखा है कि स्वदेश-प्रेमीको अपने देश के कण-कण से प्रेम होता है। घास-पात, वन,फूल और काँटे सबमें उसे एक सहज आकर्षण मिलता है। देश की संस्कृति और परम्परा के प्रति भी उसके चित्त में सद्भावना रहती है। कार्नेलिया की अभिव्यक्ति में 'स्वदेश-प्रेम' सम्बन्धी सारे लक्षण विद्यमान हैं। भारत का आकर्षण चन्द्रगुप्त के प्रेम मात्र से ही नहीं है प्रत्युत भारत की संस्कृति और भूमि से भी उसे राग है। जन्मभूमि न होने पर भी वह भारत को जन्म-भूमि के समान स्नेह देती है। देश को; मनुष्य की नहीं; प्रत्युत, मानवता की जन्म-भूमि कहती है। आलोच्य प्रसंग में, उसका देश के प्रति सांस्कृतिक और प्राकृतिक राग पल्लवित हुआ है।

व्याख्या

कार्नेलिया भारत के प्रति अपने स्नेह की व्याख्या करते हुए कहती है कि उसका भारत-प्रेम स्वदेश-प्रेम में बदल चुका है। भारत में किसी

एक व्यक्ति या स्थान का आकर्षण उसे मुग्ध नहीं किये है प्रत्युत यहाँ विभिन्नरूपा प्रकृति में उसका भावुक-चित्त रम गया है। भारत का ऋतु-परिवर्तन, ऋतु-सम्भव प्राकृतिक शोभा, यहाँ की जन-संस्कृति, कथा कहानी और सांस्कृतिक आचार-विचार सबमें उसका चित्त आकर्षित होता है। उसके मन की तन्मयता लग्न होती है। भारत में आकर उसने कितने ही स्वप्न बुने हैं; यहाँ योद्धाओं और तितिक्षुओं का त्याग भी देख चुकी है। यहाँ की ज्ञान-मीमांसा से भी उसका निकट परिचय है। उसके स्नेहाकुल मन को भारत ने ही (भारत के राजकुमार ने ही) प्रश्रय दिया है। यह सब उसे भूलता नहीं। भारत से उसके मन का सारा राग-विराग गुँथा हुआ है। इसीलिये वह भारत को व्यक्ति की नहीं; प्रत्युत संस्कृति की जन्म-भूमि मानती है।

आलोचना

अ—दो संस्कृतियों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिये भाव-प्रवण कार्नेलिया के व्यक्तित्व की कल्पना (?) की गई है। 'कार्नेलिया' नाम कल्पित है। वैसे ऐतिहासिक साक्ष्य है कि सिल्यूकस की कन्या से चन्द्रगुप्त का विवाह हुआ था। सिल्यूकस मात्र सन्धि के लिये ही यदि अपनी कन्या का दान करता तो इससे उसके व्यक्तित्व के प्रति एक प्रकार का तिरस्कार उदित होता। इस समर्पण में भी कोई आकर्षण नहीं रहता। किन्तु नाटककार ने दोनों में पूर्व स्नेह उपस्थापित कर नाटकीय रस की बड़ी मार्मिक निष्पत्ति की है इससे सिल्यूकस और कार्नेलिया दोनों का मान सुरक्षित रह गया। इस प्रकार चाणक्य की इस योजना के प्रति भी आस्था उत्पन्न होती है। ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के रस से सींचकर यथाशक्ति स्निग्ध किया गया है। नाटककार को यहाँ पूरी सफलता मिली है।

ब—नाटक की Crisis इस समय एक प्रकार से सीमा पर कथा की एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ रही है लेकिन नन्द का पतन अव-शिष्ट है। सिल्यूकस की पराजय दूर है, इसीलिये फलागम भी दूर है। लेकिन नायिका को देश की महारानी बनाने के अनुरूप यथाशक्ति कोमल, स्निग्ध और भाव-प्रवण बनाया जा रहा है। कल्पित पात्रों को सँवारने में अधिक कल्पना की गुंजाइश रहती है इसीलिये 'प्रसाद' के ऐतिहासिक पात्रों की अपेक्षा कल्पित पात्र अधिक मसृण हैं।

(स) पात्रानुकूल भाषा लिखने में 'प्रसाद' जी की प्रतिभा पिछाड़ पर ही रही। उनका देशी, विदेशी प्रत्येक पात्र विशुद्ध संस्कृतज्ञ और कवि की तरह भाषा का व्यवहार करता है। उनकी 'अलका' और उनके 'दाण्ड्यायन' के दार्शनिक कथन में कोई संस्कारगत अन्तर अधिक नहीं है। अक्सर 'प्रसाद' के पात्रों की भाषा उनकी अपनी व्यक्तिगत भाषा होती है। किन्तु कार्नेलिया के लिये तो एक निश्चित पट-भूमि है उसने भारतीय भाषाओं और संस्कृति-तत्वों का अनुशीलन-परिशीलन किया है।

उपसंहार

कार्नेलिया की स्नेहाभिव्यक्ति और भारत-प्रेम का जो रूप यहाँ स्फुट किया गया है वह नाटकीय 'रस-निष्पत्ति' और 'फलाप्ति' के विचार से नितान्त उपयुक्त है। 'भाषा' और 'भाव' एक दूसरे को ढो नहीं रहे हैं प्रत्युत एकरस होकर रस-बोध में योग-दान करते हैं—नाटककार की सफलता इसी रूप में है। प्रस्तुत प्रसंग, 'प्रसाद' की उदार प्रतिभा के प्रति आस्था उत्पन्न करने में पर्याप्त योग देता है।*

---

*(१) ग्रीक राजकुमारी कार्नेलिया के चरित्र में कहीं उतार-चढ़ाव है ही नहीं। सर्वत्र और सर्वथा वह एक-रस और एक-भाव दिखाई

(२०) सिकन्दर ने भारत से युद्ध किया है...सिकन्दर और चन्द्रगुप्त उनके अस्त्र हैं।

पृ० सं०—१६१

पड़ती है। आद्यंत उसमें दो बातें मिलती हैं—भारतीयानुराग और प्रेम। इन्हीं से सम्बद्ध अन्य भाव—भावुकता, दृढ़ता, शान्तिप्रियता—भी समय-समय पर उसमें झलकती है। जब तक भारतवर्ष में है, भारत के नैसर्गिक सौन्दर्यास्वादान में ही निरत दिखाई देती है। वह विदेशी रमणी भारत की एक-एक बात पर मुग्ध है। भारतीय आध्यात्मिकता उसके लिए जिज्ञासा का विषय है। उसने चन्द्रगुप्त से कहा है—"मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल ......।"

—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'

(२)ग्रीक राजकुमारी कार्नेलिया भावुक और सहृदय है। प्रकृति-प्रेम उसके रोम-रोम में है। भारत-भूमि के प्रथम दर्शन में ही यहाँ की प्राकृतिक छटा उसके सहज भावुक हृदय को भाव-विभोर कर देती है।

वह भारत के प्रकृतिक सौन्दर्य पर ही नहीं वरन् यहाँ के सरल जीवन और उच्च दार्शनिक चिन्तन पर भी अनुरक्त है। भारत की इन्हीं नैसर्गिक विभूतियों से प्रभावित हो वह चन्द्रगुप्त से कहती है—

'यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि है।'

—जगदीश प्रसाद दीक्षित : 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

(३) भावुकता और सहृदयता नारी के सहजात गुण हैं। कार्नेलिया भी सहृदय और भावुक है। सिन्धु-तट की मनोहर प्राकृतिक

आरम्भ

तृतीय अंक में 'चंद्रगुप्त' और कार्नेलिया का परस्पर वार्तालाप चल रहा है। कार्नेलिया अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर बने हुये स्वदेश-प्रेम की चर्चा कर रही है। वह चलते हुये युद्ध, को सेनाओं का नहीं, प्रत्युत प्रतिभाओं और संस्कृतियों का युद्ध मानती है। इन पंक्तियों में उसका देखा और विचारा हुआ अनुभव संचित है।

विवृति

कार्नेलिया अपने अनुभव के आधार पर एक स्थापना करती है (यह स्थापना 'प्रसाद' जी के विचारक मस्तिष्क की अपनी मौलिक वस्तु है) । वह बताती है सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण-मात्र किया था—वह देश की संस्कृति और आशा—आकांक्षा से परिचित नहीं हो सका था। इस युद्ध की पृष्ठ-भूमि में इस युद्ध के कर्ता नहीं, बल्कि प्रेरक व्यक्ति हैं। यह युद्ध अरस्तू और चाणक्य की बुद्धि का है, मात्र अस्त्रों का ही नहीं।

अर्थ-प्रक्रिया

कार्नेलिया ने भारत का अध्ययन किया है। सिकन्दर जिन बातों से परिचित नहीं हो सका था कार्नेलिया ने उन्हें जानने की चेष्टा की

सुषमा में वह जैसे अपने जीवन का चरम-लक्ष्य पा लेती है। भारत के प्रति उसका आकर्षण बहुशः प्रकट हुआ है, जिसके मूल में प्रणय के अज्ञात सूत्र से कहीं अधिक विशुद्ध प्रकृति सौन्दर्य के आनन्द की प्रेरणा है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण संकुचित नहीं है। इस देश के 'श्यामल कुंज घने जंगल···' उसके आकर्षण हैं। मानव-सुलभ सहानुभूति का स्रोत भी उसके अन्तर में बह रहा है।

—विश्वनाथ : वैजनाथ

है—सफल चेष्टा। सिकन्दर यहाँ वीरों की सामरिक शक्ति से ही परिचित हो सका था लेकिन भावों और आचार-विचार के अध्ययन से कार्नेलिया के दृष्टिकोण ने पर्याप्त विस्तार पाया है। उसे लगता है कि अरस्तू के महान विचारों ने ग्रीक वासियों को सुसंस्कृत और भद्र बनाया है। उसी के विचारों से प्रभावित होकर ग्रीक संस्कृति इस योग्य हो सकी कि दूसरे देशों को संस्कृति और शक्ति के क्षेत्र में पराभूत कर सके। सिकन्दर ग्रीक की शक्ति और संस्कृति का नेता और प्रतिनिधि होकर आया था। भारतीत मनीषा चाणक्य में भी सांस्कृतिक और राजनीतिक मेधा का पर्याप्त प्रस्तार है। उन्होंने अपनी प्रतिभा से मालवा और मगध का भेद समाप्त कर समग्र आर्यावर्त्त को एक करके देखने का स्वप्न देखा और अपने शिष्यों को इस दिशा में अग्रसर किया। यह संघर्ष इसीलिये चाणक्य और अरस्तू की प्रतिभा का है—सिकन्दर और चन्द्रगुप्त तो मात्र नेता हैं, चलने वाले यन्त्र हैं जिनकी प्रेरणा पृष्ठभूमि की इन बुद्धियों से मिलती है।"

यतकिञ्च प्रासंगिक

(अ) कार्नेलिया परम प्रतिभाशील बालिका है। उसकी सूझ मौलिक और पैनी हैं सभी स्त्री पात्रों की अपेक्षा वह अधिक प्रतिभाशील और भाव-प्रवण है। उसके हृदय में चन्द्रगुप्त और देश के लिये राग भी है। इसलिये नायिका के लिये वह सर्वाधिक उपयुक्त पात्रा है। सम्भवतः इसी मन्तव्य से उसके द्वारा इतनी मार्मिक उक्तियाँ कहलाई जा रही हैं।

(ब) सम्भवतः नाटककार अपनी स्थापना को कार्नेलिया के माध्यम से ही कहलाने का उपयुक्त अवसर पा गया है। सम्पूर्ण नाटक में प्रत्येक घटना का सूत्रधार-कर्म चाणक्य के द्वारा कराया जा रहा है। भारतीयों की हार या असफलता

का कारण एक तरह से चाणक्य की आज्ञा की अवहेलना ही सिद्ध की गई है। चाणक्य को युग का सबसे बड़ा मनीषी बताया गया है। पर्वतेश्वर की पराजय का मुख्य कारण चाणक्य की अवहेलना है।—गांधार-नरेश का पारिवारिक विच्छेद भी चाणक्य के कारण होता है। अलका के हृदय में स्वदेश-प्रेम चाणक्य के ही कारण होता है। सिंहरण और चन्द्रगुप्त में आर्यावर्त्त के एकत्व की उदात्त भावना का सम्प्रेषण चाणक्य के ही माध्यम से होता है। नन्द के पतन का श्रेय भी चाणक्य को है। कोई भी नाटक की घटना बिना चाणक्य के सम्पादित और सफल नहीं होती। चन्द्रगुप्त का संकट भी चाणक्य के अभाव के कारण ही है। इस प्रकार चाणक्य को अन्यतम भारतीय मनीषा सिद्ध करने में लेखक सफल हुआ है। कार्नेलिया की उक्ति के साथ (नाटक के अध्ययन के पश्चात) इसीलिये आपत्ति का कोई कारण नहीं।

अन्त

प्रस्तुत प्रसंग में एक बड़ी ऊँची बात कही गई है। नाटककार इस उक्ति को नायिका की मात्र भावुकता ही बनाकर नहीं छोड़ता प्रत्युत समग्र नाटक में एतदर्थ वह सूत्र भी एकत्र करता रहता है। इस प्रकार उक्ति की सार्थकता नाटक की समीक्षा में सहायता देती है और नाटककार के मन्तव्य के विषय में भी एक तथ्यपूर्ण सूत्र मिल जाता है। प्रस्तुत प्रकरण की विशेषता का रहस्य यही होना चाहिये।



—चतुर्थ अङ्क—

(२१) मेरे जीवन के दो स्वप्न थे······एक राजकुमारी वन कर क्या करेगी।

पृ० सं०—१६३

आरम्भ

प्रस्तुत प्रसंग से नाटक का चतुर्थ अंक (अन्तिम अंक) प्रारम्भ होता है। कथा काफी बिखर चुकी है। नाटकीय कौतूहल सीमा पर है। 'फलागम' की दिशा का निर्धारण हो चुका है, अस्तु। कुछ आवश्यक पात्रों को ('फलाप्ति' में जिनसे बाधा पड़ने की सम्भावना है) समाप्त करना है। सुन्दरी कल्याणी का परिवार नष्ट हो चुका है। उसका हृदय अगाध पीड़ा से भारी है। पर्वतेश्वर भी बाधा बना है। अभी जीवित है। दोनों को समाप्त करना है। मृत्यु के पूर्व कल्याणी के सामने कुछ सुकुमार स्वप्न और कुछ स्मृतियाँ आकर छा जाती हैं उनकी अभिव्यञ्जना प्रसंग में सुन्दर ढंग से की गई है।

विवृति

राजकुमारी कल्याणी चन्द्रगुप्त को स्नेह करती थी। वह मनसा उसकी हो चुकी थी। शरीरसा उसे अब चन्द्रगुप्त की प्रिया बनना था किन्तु नाटककार को दो संस्कृतियों का सम्मिलन दिखाना अभिहित

है अतः कल्याणी को समाप्त करना आवश्यक है। इसलिए कल्याणी के अनुताप की योजना की गई है। वह अपनी अनुताप की स्थिति में पर्वतेश्वर को भी समाप्त कर देती है। इस प्रकार बाधाओं का अन्त हो जाता है। कथा संवृति के लक्ष्य इसी प्रसंग से प्रारम्भ कर दिये गये हैं।

अर्थ-प्रक्रिया

कल्याणी सोचती है कि उसने कल्पना का एक संसार बनाया था। सोच लिया था, जिस तरह दिन समाप्त होने पर रात्रि में नक्षत्रों का विलास आरम्भ होता है उसी तरह इस सामरिक दुर्दिनके समाप्त हो जाने पर वह चन्द्रगुप्त रूपी नक्षत्र का सहवास प्राप्त कर सकेगी। उसका दूसरा संकल्प था—उस अहमन्य पर्वतेश्वर से प्रतिशोध; जिसने कल्याणी के पिता की ओर से भेजे गये विवाह-प्रस्ताव का अपमान किया था, कल्याणी के गौरव का अवमानित किया था। लेकिन ऐश्वर्य नष्ट हो जाने के कारण जो उपवन उसके विहार के लिये निर्मित था वही उसके लिये बन्दी-गृह हो गया है। वह मगध-सम्राट नन्द की एकमात्र सन्तान थी–निश्चय था कि साम्राज्ञी वही बनेगी। लेकिन समय के कठोर हाथों ने सारे बने बनाये चित्रों को पोंछ दिया है–रूप शेष है, यौवन शेष है, मन की भावनायें शेष हैं, पूरी की पूरी कल्याणी शेष है; लेकिन, उस महाचित्र की मात्र-अवशेष है! खण्डहर है!! अधिकार और ऐश्वय के छिन जाने से उसका महत्त्व भी छिन गया। अब उसका जीवन लज्जा और अवमानना की क्रीड़ा-भूमि बन रहा है। सारा नन्द-वंश नष्ट हो गया। कल्याणी का जीवन व्यर्थ है। उसे मृत्यु की अपेक्षा है।

विमर्श

(अ) कल्याणी का अनुताप अभाव से उत्पन्न हुआ है। निर्वेद, अभाव का पोष्य पुत्र है उसमें अभावजन्य आभिजात्य है। परिस्थिति-

परिवर्तन से मनुष्य के मूल्य में कितना अपार परिवर्तन उपस्थित हो जाता है इसे कल्याणी बखूबी महसूस कर रही है। कल्याणी की निराश उद्भावना परिस्थिति-जन्य है लेकिन कथा-संवृति में इससे सहायता मिलती है। वह चन्द्रगुप्त को प्रेम करती है ऐसा भी हो सकता था कि वह चन्द्रगुप्त से उनकी बात कहे और···लेकिन नाटकीय उद्देश्य कुछ दूसरी दिशा की ओर है। यह अनुताप नाटकीय उद्देश्य की ओर अग्रसरण में योग देता है।

(ब) नाटकीय अवस्था की 'प्राप्त्याशा' के लक्षण प्रारम्भ हो गये हैं। चन्द्रगुप्त सम्राट हो चुका है। एक प्रकार से यहीं फलाप्ति भी हो सकती थी लेकिन सिल्यूकस का युद्ध और कार्नेलिया का परिणय मुख्य फल है। अस्तु यहाँ तक प्राप्त्याशा ही मानी जानी चाहिये।

अन्त

नाटक सुखान्त है खल-पात्र नन्द का सर्वतः पतन नाटकार का अभिप्रेत है इसलिये मनोहर पात्रा, नायिका की प्रेमिका, कल्याणी के अनुताप की योजना की गई है। कल्याणी के अनुताप में; अनुताप-सम्भव सारे लक्षण विद्यमान हैं। अनुताप में 'असफल प्रेम' 'प्रतिशोध की भावना की तीव्रता, नष्ट ऐश्वर्य की चिन्ता, 'लज्जा', 'ग्लानि' आदि भावों का संयुक्त-सम्मिल्लन रहता है। कल्याणी के अनुताप में सब कुछ नियोजित किया गया है*।

---

(१) कल्याणी का एक प्रेमी-हृदय भी है, जिसने चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी आलम्बन से अपना नाता जोड़ा है। वीर हृदय वीर को पहचानता हैं और उसने चन्द्रगुप्त को पहचान कर ही राग बढ़ाया है। बचपन में वे एक दूसरे से परिचित थे, लेकिन बचपन की कहानी कुछ और होती है, जवानी का संगीत कुछ और।

(२२) संघर्ष ! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो······
टटोलने से भी नहीं जान पड़ता।

पृ० सं०—२०५

परिस्थिति की प्रेरणा से प्रेम के इस मधुर प्रवाह में सहसा गतिरोध उत्पन्न होता है। मगध में जन-क्रान्ति की ऐसी प्रचण्ड आँधी, उठती है कि विलासी और अत्याचारी नन्द उसके थपेड़े में पड़ जाता है एवं शकटार द्वारा उसकी हत्या होती है। इस हत्या में चन्द्रगुप्त और उसके सहयोगी सक्रिय योग-दान देते हैं। कल्याणी की बड़ी दयनीय परिस्थिति है। उसका आत्म-सम्मान ही उसे डंक पर डंक मार रहा है। उसके जीवन के दो सुनहले सपने थे, 'दुर्दिन के बाद आकाश के नक्षत्र विलास सी···' लेकिन आज जैसे वे अधूरे ही रह जायेंगे। वह तो अपने उपवन में ही वन्दिनी है। वही शरीर है, वही रूप है।

—विश्वनाथ : बैजनाथ

(२) कल्याणी के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व एवं उसके कोमल हृदय को उसके निकटतम सम्बन्धियों ने नहीं पहचाना। चन्द्रगुप्त की बात न मान कर उसके पिता ने उसके अनुरोध की अवहेलना की और चन्द्रगुप्त उसके प्रेम को उसके जीवन के अन्तिम क्षण में ही पहचान सका। कल्याणी के करुणा-कलित हृदय का परिचय हमें उसकी एक स्वगतोक्ति में मिलता है—'मेरे जीवन के दो स्वप्न थे—दुर्दिन के बाद आकाश के नक्षत्र विलास सी चन्द्रगुप्त की छबि ओर पर्वतेश्वर से प्रतिशोध'। कल्याणी ने जीवन में पर्व्वतेश्वर से भरपूर प्रतिशोध लिया। पशु के समान विलासी और मद्यपी पर्व्वतेश्वर उसे अपने विलास की सामग्री, बलपूर्वक बनाना चाहता था। वह उसे असह्य हो उठा और उसने उसका वध कर अपना प्रतिशोध पूरा किया।

—जगदीशप्रसाद दीक्षित—'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

उपक्रम

प्रस्तुत गद्यांश 'प्रसाद' के चन्द्रगुप्त नाटक के चतुर्थ अङ्क के चतुर्थ दृश्य से लिया गया है। चन्द्रगुप्त युद्ध करते-करते ऊब गया है। तरुण है। तरुण के लिये प्रेम सबसे बड़ा प्राप्य है। उसके सारे स्नेह-तन्तु छिन्न-भिन्न हो गये हैं। कल्याणी, कार्नेलिया, मालविका जिन जिन से उसने अपना मन बाँधा उद्देश्य की भीड़ में सब पीछे छूट गये। आगे तो बढ़ आया है पर अकेला है चन्द्रगुप्त। उसका मन स्नेह का भूखा है। प्रस्तुत स्थान पर उसके स्नेहाकुल मन की भाव-दशा का निरूपण एवं मालविका से प्रणय याञ्चा कराई गई है।

प्रसार

मालविका चन्द्रगुप्त की प्रेमिका है। यह प्रेम एकोन्मुख नहीं, उभयोन्मख है। चन्द्रगुप्त भी पूर्ण मन से मालविका को चाहता है मालविका भी अपने मन का अथाह सागर पूर्णिमा के चन्द्र की तरह चन्द्रगुप्त के लिये उँडेल देना चाहती है। बड़ी द्विधा है। नाटक का उद्देश्य दूसरी ओर संसरणशील है। कार्नेलिया को नायिका बनाना है। मालविका को समाप्त करना है। यह तीव्र राग कहीं छोटा न हो इसलिये अन्तिम समय दोनों में उकत्ट प्रेम की योजना कर दी गई है। मालविका महत उद्देश्य के लिये प्रेम के ही कारण प्रेम से अपने प्रेम का, प्रेममय जीवन को अन्त कर लेती है। चन्द्रगुप्त के उत्कट प्रेम और संवरण न करने की मनःस्थिति का विवेचन विवेच्यांश का साध्य और प्रतिपाद्य है।

अर्थ-विवृत्ति

चन्द्रगुप्त युद्ध और संघर्ष से ऊब चुका है। मालविका संघर्षों की बात करती है तो चन्द्रगुप्त विह्वल हो उठता है। कहता है संघर्ष तो

बाह्य ही नहीं है मालविका ! आन्तरिक भी है। इन राजनीतिक संघर्षों के अतिरिक्त मानसिक संघर्ष भी तो है। मैं भाव और अभाव के संघर्ष में पिस रहा हूँ। मुझे प्रेम और साहचर्य की भी तो अपेक्षा है। साम्राज्य है। साम्राज्य की सारी सम्भव उपलब्धियाँ हैं। फिर भी, अभाव महसूस होता है। वह अभाव संगिनी का है। मालविका चन्द्रगुप्त की दासी नहीं, प्रेमिका है। मालविका भली-भाँति चन्द्रगुप्त के मन की बात जानती है। उसकी पीड़ा और प्रेम-यातना से परिचित भी है। वह इस बात का पता लगाये कि चन्द्रगुप्त का हृदय कितना शून्य है !

वैशिष्ट्य-कथन

चरित्रगत

चन्द्रगुप्त धीरोदात्त नायक है। लेकिन उसके अन्तर्गत लालित्य* की भी योजना की गई है। वह युद्ध-क्षेत्र में जितनी वीरता का प्रदर्शन करता है प्रेम-क्षेत्र में भी उतनी ही आसक्ति से भाव-प्रदर्शन की आतुरता दिखलाता है। वह जितना बड़ा युद्ध वीर है उतना ही बड़ा स्नेही भी है। चाणक्य जैसे निर्मम राजनीतिज्ञ के अंक में रहने पर भी उसका प्रेम-स्रोत प्रवाहित होता रहता है। यदा कदा उसे चाणक्य की कठोरता अखरती भी है। माता-पिता से वियुक्त होना पड़ता है। सुन्दरी कल्याणी की मृत्यु के अवसर चाणक्य कहता 'चलो निष्कंटक हुए' उसका सहज हृदय पीड़ा से सिहर उठता है कहता है 'गुरुदेव ! इतनी निष्ठुरता !' आलोच्य गद्यांश में उसके प्रेमपूर्ण व्यक्तित्व की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा-शैली

आलोच्य प्रसंग की भाषा में प्रेमाभिव्यक्ति की बड़ी सफल योजना की गई है। हृदय के उतार-चढ़ाव के अनुरूप वाक्यों में लघुता और

दीर्घत्व है। भावों की गति के अनुसार भाषा के छन्द (Rhythm) की सुन्दरता का ध्यान बरता गया है। 'तुम मेरी ताम्बूल-वाहिनी नहीं हो, मेरे विश्वास की, मित्रता की प्रकृति हो, वाक्य में चन्द्रगुप्त का उत्कट-प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। 'मैं दरिद्र हूँ कि नहीं?' वाक्य-खण्ड में उसकी विवशता और प्रणय-बुभुक्षा की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है। भाषा की दृष्टि से प्रकरण सम्पूर्ण नाटक में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

शास्त्रीय किञ्चित

'फलागम' के पूर्व का समस्त संघर्ष इन पंक्तियों के द्वारा लक्षित होता है। कथानक को यथा-शक्ति संवृत करने के लिये घटनायें प्रारम्भ की गई है। मालविका के प्रेम के प्रति पाठक की सहानुभूति अन्त तक बनी रहे इसलिये प्रस्तुत प्रसंग की उद्भावना की जाती है। जिस मालविका ने बिना किसी संकोच के चन्द्रगुप्त के लिये अपना जीवन दान कर दिया उसे चन्द्रगुप्त कितना स्नेह करता था यह स्पष्ट करना ही प्रसंग के मूल की मूल-चेतना है।

उपसंहार

भाषा, भाव, प्रेमातिरेक की व्यंजना, चन्द्रगुप्त के ललित चरित्र-पक्ष का उद्घाटन प्रसंग का मूल अभिप्रेत है। मालविका के समर्पित प्रेम के लिये इतनी भावुकता अधिक नहीं लगती। सम्राट को इतना तो करना ही चाहिये था। अन्त में सम्राट कहते हैं 'आह! वह स्वर्गीय कुसुम!!*

---

* नायक चार प्रकार के होते हैं। धीरोदात्त, धीर ललित, धीर-प्रशान्त और धीरोद्धत। चन्द्रगुप्त धीरोदात्त नायक है।

(२३) चन्द्रगुप्त ! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा साम्राज्य करुणा का था। मेरा धर्म प्रेम का था…………जान गया मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ।

पृ० सं०—२११

"महासत्वो अतिगम्भीरः क्षमावान विकत्थानः।
स्थिरो निगूढ़ाहंकारो धीरोदात्त दृढ़व्रतः॥"

इसी प्रसङ्ग में मालविका यह कह कर कि "सम्राट, अभी कितने ही भयानक संघर्ष सामने हैं", उसे प्रोत्साहित करती है, तब मानो चन्द्रगुप्त का श्रम-शिथिल मन बिलबिला उठता है—

• 'संघर्ष' युद्ध देखना चाहती हो तो मेरा हृदय फाड़ कर देखो, मालविका !

चन्द्रगुप्त की इस उक्ति में अधिकार-भाव से न तो उदासी है और न योगियों की समाधि-कामना है। चन्द्रगुप्त मनुष्य ही है। मानव-जीवन में एकरसता अरुचिकर हो जाती है। एक ही प्रकार के भावों और विचारों में मन संलग्न रहने से मन ऊबने लगता है और एक ही प्रकार के एकांगी जीवन के लिए मन में आकर्षण नहीं रहता। राज-नीति, युद्ध और निरन्तर संघर्षों में संलग्न रहने से उसका चित्त परिवर्तन के लिए पुकार उठता है। कर्तव्य की वेदी पर वह अपने हृदय की जिस कोमलता की आहुति देता रहा अब उसी में उसे अपने चित्त का विश्राम अनुभव होता है। चन्द्रगुप्त के चरित्र में साधारण जन-सुलभ दुर्बलता केवल एक बार इसी अवसर पर दिखाई पड़ी। अन्यथा वह सर्वत्र गम्भीर और पूर्ण आत्म-संयमी है।

—जगदीश प्रसाद दीक्षित : 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

आरम्भ

नाटक की 'अवमर्श सन्धि'* यहाँ से प्रारम्भ होती है। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के माता-पिता को प्रवासी बना दिया। चन्द्रगुप्त को इससे क्षोभ हुआ। उसने कहा—'देखता हूँ आप मेरे कुटुम्ब का भी नियन्त्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।' चाणक्य का हृदय टूट जाता है और वह चन्द्रगुप्त को छोड़ कर चला जाता है। छोड़ने के पूर्व उसके मन में जो पीड़ा और आत्म-ग्लानि होती है उसी की अभिव्यक्ति प्रस्तुत अंश में की गई है। प्रसंग नाटक के चतुर्थ अंक के पाँचवे दृश्य से लिया गया है।

प्रस्तार

चाणक्य चन्द्रगुप्त के कथन से मर्माहत हो उठता है। अपने स्नेह-पात्र की उपेक्षा अधिक पीड़क होती है। उसका मर्म छिद जाता है। जिसके लिये उसने इतना कुछ किया, उसी के द्वारा इतनी अवमानना? उसका सम्पूर्ण जीवन उसके स्मृति-पट पर घूम जाता है। वह सोचता है इतनी शिक्षा और विद्या का उसने कैसे प्रयोग किया? ब्राह्मण था। ब्राह्मणोचित मार्ग का अनुसरण करना चाहिये था किन्तु••

व्याख्या

चाणक्य अनुताप के साथ कहता है 'मैंने गलत काम किया। मैंने चन्द्रगुप्त के लिये क्रूर और निन्द्य राजनीति में हाथ डाला। करुणा

* नाटक की पांच सन्धियाँ होती हैं। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण। अवमर्श सन्धि में फलागम होते-होते नई बाधा उपस्थित हो जाती है। इसमें 'पताका' और प्रकरी का योग आवश्यक नहीं है। चन्द्रगुप्त को गुरु वियोग से एक नई बाधा का सामना करना पड़ता है इसलिये यहाँ 'अवमर्श सन्धि' मानी गई।

और प्रेम के ब्राह्मणोचित मार्ग पर चलने से अपने मन को वर्जित करता रहा। शान्ति और आनन्द के उपासक ब्राह्मग को सहज निसर्ग का सुख भोगना चाहिये था। चाँद, सूर्य, शस्य-श्यामला-भूमि और ज्ञान का अमृत, ब्राह्मण के प्राप्य होने चाहिये। बुद्धि और संतोष का प्रतीक रहने के बजाय मैंने चन्द्रगुप्त के लिये पवित्र के स्थान पर अपवित्र मान्यताओं का वरण किया। स्नेह, पुष्प, प्रेम के स्थान पर क्रमशः मैं कुचक्र, काटें और भय के साधनों को एकत्र करने में बुद्धि लगता रहा। यह सब जितना कुछ राजनीतिक-लक्ष्य के लिये मैंने किया उस सम्पूर्ण का फल-भोक्ता चन्द्रगुप्त ही है, उसी के लिए वह सब करता रहा।—आर्त होकर वह पुनः चन्द्रगुप्त को सम्बोधन करता है "चन्द्रगुप्त! अपनी अधिकार शक्ति का संवरण करो मेरा। जीवन धर्म से विरत होने तथा राजनीतिक कुकर्मों के कारण गिर चुका है। अब तक झूठ-मूठ मैं किसी असत्य को ही सत्य समझता रहा हूँ। एक छाया-मात्र आभास को सत्य मानता रहा हूँ। जीवन की शक्ति का अपव्यय करता रहा हूँ। शान्ति छोड़ कर मैंने अपना ब्राह्मण-रूप भुला दिया था। आज तुम्हारी बात से अपनी स्थिति का पता लगा।"

वैशिष्ट्य विवेचन

अ—चाणक्य ब्राह्मणत्व की साक्षात प्रतिमूर्ति है। अपनी इच्छा का विरोध उसे सह्य नहीं! वह सर्वश्रेष्ठ और सार्वभौम होकर रहना चाहता है। चन्द्रगुप्त के तनिक प्रतिवाद से क्षुब्ध हो उठता है। अपने जीवन का सिंहावलोकन करता है और जब उसे लगता है कि यह सब वह एक व्यक्तिके लिये हो करता रहा है तो उसे अत्यन्त ग्लानि होती है। एक के लिये उसने अनेक का वध किया—नन्द का पतन, पर्वतेश्वर का विनाश, कल्याणी और 'मालविका की हत्या', सुवासिना के प्रेम का परित्याग सब कुछ उसने चन्द्रगुप्त के लिये किया। अपने कृत्य पर उसे

अत्यन्त क्षोभ होता है और वह अपनी जीवन की कुक्रिया का पाठ दुहरा जाता है। इस प्रक्रिया में चाणक्य का दीप्त ब्राह्मणत्व दर्शनीय है। ब्राह्मणत्व अथवा अपनी सार्वभौमिकता पर आँच वह बर्दास्त ही नहीं कर सकता। चन्द्रगुप्त का परित्याग इस बात का साक्षात प्रमाण है।

ब—चाणक्य के अनुताप की भाषा में बड़ी मार्मिकता है। उसके निर्वेद-वचन में इतनी अधिक ग्लानि अभिव्यक्त हुई है कि वह पाठक की सहानुभूति अनायास ही खींच लेता है। भावों के उतार-चढ़ाव के अनुसार वाक्यों की क्रम-व्यवस्था की गई है। भावों के छन्द के साथ भाषा का छन्द चल रहा है इसलिये भाषा अपनी भावाभिव्यक्ति में उद्देश्य-सिद्ध बन सकी है।

उपसंहार

नाटक की 'अवमर्श सन्धि' का प्रारम्भ होता है। एक नई बाधा आरम्भ होती है और 'फलागम' की स्थिति दूर हो जाती है। चाणक्य का दुःख नाटकीय-रस में वृद्धि करता है क्यों कि इससे कौतूहल और संवेदनशीलता दोनों का रस-संचार होता है। नाटक के स्वाभाविक कथा-प्रवाह में एक महान और अप्रत्याशित मोड़ आता है।—भावशबलता, घटनाक्रम में आश्चर्य-जनक परिवर्तन, निर्वेद इत्यादि विशेषतायें प्रकरण की शोभा हैं।

---

(२४) मित्र आम्भीक ! मनुष्य साधारण धर्मा पशु है······ देवता भी हो सकता है।

पृ० सं०—२२०

आरम्भ

प्रस्तुत प्रसंग 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त' नाटक से लिया गया है। आम्भीक और अलका का मिलन होता है। आम्भीक अलका के व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। अपनी नीचता के लिये उसे आत्म-ग्लानि होती है। अलका से वह क्षमा-याचना करता है। उसके दोष का मार्जन होता है। सिंहरण उसे हृदय लगाता है और आलोच्य सूक्ति का प्रयोग उसकी मनःशान्ति के लिये करता है।

प्रस्तार

आम्भीक का जीवन कुचक्रों और अनुचित महत्वाकांक्षाओं का जीवन रहा। उसे अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में कभी सफलता नहीं मिली। पिता और दुलारी बहन ने देश छोड़ दिया। राजकुमारी स्वदेश-भक्ति की धूनी रमाये दर-दर की खाक छानती रही। लेकिन देश-द्रोही भाई के सुख और वैभव की ओर उसने मुड़ कर नहीं देखा। इस घटना का प्रभाव आम्भीक पर पड़ा और उसने अलका के महत्व के साथ उस महान लक्ष्य को भी अङ्गीकार कर लिया जिसके लिये चन्द्रगुप्त, चाणक्य, और सिंहरण एकनिष्ठ होकर सचेष्ट रहे। आम्भीक के मानसिक-परिमार्ज़न के पश्चात सिंहरण ने उसके अनुताप को कम करने के लिये मनुष्य की सामान्य त्रुटियों की ओर इंगित किया।*

---

* अनुताप शान्ति के लिये अक्सर लोग तोष-वचन का व्यवहार करते हैं और मनुष्य के स्वभाव, नियति या विधाता को दोषी बना कर तथाकथित पात्र का मानसिक-सन्तुलन ठीक करना चाहते हैं। कैकेयी की अनुतापशांति के लिये राम ने ऐसे ही वचनों का व्यवहार किया था।

विश्लेषण

सिंहरण ने आम्भीक को परितोष देते हुये बताया कि मनुष्य सामान्यतः अपनी मौलिक प्रवृत्तियों के कारण पशु के समान है। प्रत्येक मनुष्य में पाशविक प्रवृत्तियों का संघर्ष होता रहता है किन्तु मनुष्य ने विवेक और बुद्धि से सदैव इन जड़ प्रवृत्तियों को शमित करने की साधना की है। मनुष्य जितना ही मनोविकारों को शमित कर सका है उतना ही बड़ा होता गया है। स्वार्थ और व्यक्तिगत लोभ की सीमा तोड़ कर मनुष्य देवत्व तक प्राप्त करने में सफलीभूत हुआ है।

वैशिष्ट्य

(अ) प्रस्तुत वाक्य में आत्म-ग्लानि से दग्ध आम्भीक की शांति के लिये एक शाश्वत नियम और शिक्षाप्रद सूक्ति की योजना की गई है। मनुष्य अपनी कमजोरियों को तोड़ कर बड़ा भी बन सकता है। पशु से मानव, मानव से देवता तक हो सकता है।

(ब) नाटक की कथा के बिखरे सूत्रों को जोड़ने की चेष्टा की जा रही है। अनावश्यक पात्रों की, या तो हत्या कर दी जा रही है; या तो खल और विरोधी पात्रों का आत्म-परिष्कार किया जा रहा है। सारी कथा को केन्द्रित करके सम्पूर्ण रूप से नाटकीय-फलाप्ति के लिये सोद्देश्य प्रयास किया जा रहा है। पर्वतेश्वर, कल्याणी, 'मालविका' इत्यादि की मृत्यु के बाद भी आम्भीक का एक अलग व्यक्तित्व रह गया था, जिससे चन्द्रगुप्त के सार्वभौम होने में बाधा पड़ती। उसके आत्म-परिष्कार के द्वारा मगध से लेकर तक्षशिला पर्यन्त चन्द्रगुप्त

"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।
जिस जननी ने जना भरत सा भाई॥"

(साकेत) मै० श० गु०

की सर्वभौमिकता निश्चित हो जाती है। [वैसे संस्कृति-संयोग के लिये पुनः अविमर्श सन्धि की नई बाधा उपस्थित की जा रही है। कार्नेलिया इस प्रकार चन्द्रगुप्त की महारानी हो जाती है, और चंद्रगुप्त दो संस्कृतियों का संयोजक तथा समग्र आर्यावर्त का एकछत्र सम्राट हो जाता है]

अवसान

प्रस्तुत प्रसंग नाटकीय कथा-संवरण में महत्वपूर्ण योग देता है। नाटक की उद्देश्य-प्रतिष्ठा में भी इस घटना से सहायता मिलती है। सूत्र-भाषा मार्मिक और प्रेषणीय है। इसमें एक शाश्वत सिद्धान्त की बात कही गयी है। प्रसंग की सार्थकता इसी रूप में है।

---

(२५) अलका ! उस प्रचण्ड प्राक्रम को जानता हूँ परन्तु यह भी जानता हूँ कि सम्राट मनुष्य हैं.................आवें अपना प्रमाण दें।

पृ० सं०—२२१

उपक्रम

प्रस्तुत प्रसंग 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त' नाटक से लिया गया है। चन्द्रगुप्त को आर्य चाणक्य छोड़ कर चले आये हैं। सिंहरण भी गुरु-देव की खोज में वियुक्त होकर चला आया है। 'चन्द्रगुप्त' अकेला बच गया है। सिंहरण सुहृद है। सम्राट की मानसिक प्रताड़ना की कल्पना का निववेदन अलका से करता है। अलका की चन्द्रगुप्त पर परम श्रद्धा है। वह उसकी शक्ति की विश्वासिन है। कहती है "वे किसी की अपेक्षा नहीं

करेंगे। जानते हैं कोई न कोई उसकी सहायता करेगा ही"। सिंहरण अलका की इस 'अतिमानवीय कल्पना' का अत्यन्त संयत और प्रिय उत्तर देता है जिसमें चन्द्रगुप्त के प्रति योग्य-समादर, अपेक्षित समानुभूति और अयाचित प्रेम भी है।

विश्लेषण

सिंहरण अलका का उत्तर देते हुए निवेदन करता है कि वह चन्द्रगुप्त की सामरिक प्रतिभा और प्रचण्ड शक्ति से परिचित है। फिर भी चन्द्रगुप्त मनुष्य है। मित्र और गुरु के वियोग का ताप उसे उत्पीड़ित करेगा ही। अपने लोगों से भी बार-बार सहायता मांगने में आत्मा विरोध करती है। सहायता न माँगने की इस प्रवृत्ति में कोरा दम्भ ही नहीं रहता। वस्तुतः अपने लोगों पर विश्वास रहता है और उनके सौहार्द्र से अपेक्षित सहायता मिलने का निश्चय भी। जो प्राप्य है उसे बार-बार क्या माँगना ? चन्द्रगुप्त का मौन, विश्वास के अभिमान के कारण है, दम्भ के कारण नहीं। मन यदि अपने ऊपर विश्वास करके दूसरों की सहायता नहीं माँगता तो भी उसकी आवश्यकता जीवन में समाप्त नहीं हो जाती। वे हमारे ऊपर विश्वास करते हैं। जानते हैं कि असमय में हमें उनकी सहायता करनी पड़ेगी। इसलिये चुप है। एक तरह से हमारे स्नेह-मैत्री की वे परीक्षा ही ले रहे हैं।

समीक्षा

(अ) सिंहरण के इस कथन की बड़ी सूक्ष्म अनुभूतियाँ संकलित की गई है। मानव-मन की नितान्त क्षीण भावनाओं को भी वह पहचानता है। चन्द्रगुप्त के चुप रहने से वह दुखी नहीं है, अलका की भाँति चन्द्रगुप्त की अप्रतिम शक्तिमत्ता का भी

वह विश्वासी नहीं! वह सम्राट को अन्ततः मनुष्य* मानता है। वह चन्द्रगुप्त के मौन को अहं नहीं, उसे विश्वास और सौहार्द्र का अभिमान कहता है। मैत्री निभाने का इतना ऊँचा आदर्श सिंहरण की ही कल्पना से सम्भव है। वह जानता है कि चन्द्रगुप्त सिंहरण और चाणक्य के विश्वास पर ही समर भूमि में कूद पड़ेगा और अपने स्नेहियों को अपनी सहायता के लिये मूक-निमन्त्रण देगा। प्रियजन अपने नाश की धमकी देकर भी कभी-कभी स्नेह प्राप्त कर लेते हैं। कितनी मार्मिकता है प्रस्तुत प्रसंग में?

(च) प्रस्तुत प्रसंग से सिंहरण के धीर-ललित व्यक्तित्व का स्फुटन होता है। वह सचमुच चन्द्रगुप्त का अनन्य सुहृद है। चन्द्रगुप्त के लिये उसके मन में अन्यथा-संचार हो ही नहीं सकता।

पर्यवसान

मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता, स्निग्ध मैत्री की भाव-सम्पदा, सिंहरण का चरित्र-स्फुटन, प्रकरण की मुख्य विशेषतायें हैं। भाषा भावानुकूल और संयत है। कविता की अपेक्षा तथ्य और सत्य की ओर अधिक ध्यान रखा गया है। 'प्रसाद' का मनोवैज्ञानिक चित्रण और अनुभूतियों के पकड़ की विशेषता दर्शनीय है। प्रकरण पूर्णरुपेण सिद्ध है।

———

* सिंहरण ने ही कहा था 'मनुष्य समानधर्मा पशु' है। इस प्रकार सम्राट को वह सामान्य ही मानता है।

(२६) मेघ के समान युक्त वर्षा सा जीवन-दान.............
इस रंग-मंच से हट जाना है। पृ० सं० —२२३

आधार

प्रस्तुत गद्यांश 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ अंक से अवतरित है। सुवासिनी एक बार फिर चाणक्य से मिलती है। चाणक्य का मरुथल जैसा हृदय एक बार पुनः हरित हो उठता है। किन्तु वह उद्देश्य के लिये भाव-कठोर हो उठता है और सुवासिनी को कार्नेलिया के पास भेज कर चन्द्रगुप्त के प्रति कार्नेलिया का स्नेह तीव्र करना चाहता है। सुवासिनी को राक्षस की पत्नी बनाने का भी निर्णय सुना देता है और राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाने की बात भी बता देता है। सुवासिनी पराभूत हो कर इस त्याग पर विस्मय करती है और पूछती है कि क्या वह अपने प्रतिद्वन्दी को सुवासिनी के लिये इतना महत्व दे देगा ? चाणक्य ने जो उत्तर दिया उसे ही विवेचन के लिये प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुति

चाणक्य महापुरुष था। सुवासिनी उसकी प्रेमिका थी किन्तु, यदि सुवासिनी के माध्यम से एक राजनीतिक-मन्तव्य सिद्ध हो जाता था तो उसने सुवासिनी को भी प्रतिद्वन्दी के लिये दे दिया। कितना कठोर त्याग है! सुवासिनी के विस्मय-प्रश्न पर उसने ब्राह्मणत्व के महान आदर्श की जो व्याख्या प्रस्तुत की वह युग-युग के महापुरुष का आदर्श हो सकती है। कहता है—

व्याख्या

ब्राह्मण के जीवन का आदर्श है कि वह दानी हो। दान में उसका आदर्श निस्वार्थ मेघ के दान के समानान्तर हो। वह इसलिये

जीवन्त तत्वों का दान करे कि दान उसका कर्त्तव्य है। अपने दान से वह किसी प्रकार के सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राप्य की सम्भावना न करे। जीवन-दान ब्राह्मण का प्रथम आदर्श है। ब्राह्मण अपने ज्ञान और अनुभव के प्रकाश से अज्ञानियों के अज्ञानान्धाकार को दूर करने की चेष्टा करे। लेकिन उसका ज्ञान दान पात्रत्व के पक्षपात के साथ न हो। वह सूर्य की तरह समदृष्टि रख कर हर-एक की जिज्ञासा शांत करे। कुछ भी गोपन न रखे। ज्ञान देय है। देने के लिये है। सूर्य उसका आदर्श हो। ब्राह्मण को वृत्तियों का शमन करना चाहिये। वह बाहर से आने वाले दुःख, अपमान और इन्द्रिय-जनित वासनाओं की उत्तेजना से प्रभावित न हो। वह सब कुछ अपने आत्मा में संवृत्त कर ले। संवर के क्षेत्र में उसका आदर्श सागर के समनान्तर होना चाहिये जो नदियों को अपने बीच पचा लेता है। उनके आने से तनिक भी क्षुब्ध नहीं होता। अपनी सीमा की अतिक्रमण नहीं करता। अन्त में चाणक्य व्यक्तिगत बात कहता है, बताता है कि वह अब राजनीतिक रंग-मंच से हट जायेगा क्यों कि अब चन्द्रगुप्त की बाधायें समाप्त हो चुकी है। वह शरद के शशि की तरह निर्मेघ हो चुका है। अपना पूर्ण प्रकाश कर सकता है। जब तक उसकी बाधाओं का रंच-मात्र भी अवशिष्ट है वह चन्द्रगुप्त के लिये सब कुछ करता रहेगा!

पर्यालोचन

(अ) चाणक्य के व्यक्तित्व का सर्वाधिक उदात्त रूप इन पंक्तियों में स्फुट है। इसके पूर्व वह कहीं राजनीतिक कूट-चक्र के कारण अत्यन्त कठोर दिखाई पड़ता है, कहीं तनिक से अपमान के कारण घोर असहिष्णु हो उठता है और कहीं मामूली लक्ष्य के लिये निर्मम बलिदान करता है। इस प्रसंग के पूर्व उसका अहँ, गहन कूट-चक्र, ब्राह्मणत्व का पुनः-पुनः प्रलाप और चिड़चिड़ाने वाला उग्र रूप ही सामने आता

रहा है किन्तु यहाँ वह महान त्यागी और मनुष्यता के उच्चतम आदर्श का निर्वाह करने वाला महान पुरुष दीख पड़ता है। उसके व्यक्तित्व की यह रूप-रेखा युग-युग के महापुरुषों को प्रेरणा देनेवाली है।

(ब) चाणक्य इस स्थल पर नितान्त गम्भीर और उदार रूप में आता है। जीवन भर की कठोर साधना के फलस्वरूप प्राप्त सिद्धि को एक ठीकरे की भाँति ठुकरा देता है लगता है जैसे उसके जीवन का कुछ भी इस महान प्राप्ति में रिक्त ही नहीं हुआ। यहाँ वह चारों ओर से एकदम रिक्त हो जाता है लेकिन उसकी रिक्तता भी कितनी विशाल है, वृहत आकाश की तरह व्याप्त जिसमें नाना लोक और ब्रह्माण्ड बन-बिगड़ रहे हैं।

उपसंहार

नाटक की कथा को केन्द्रित किया जा रहा है। सभी नाटकीय पात्रों का या तो अन्त या परिष्कार कर दिया जा चुका है। सुवासिनी शेष थी उसे भी यथा स्थान ठीक कर दिया गया। चाणक्य का अपना निश्चय भी व्यक्त हो गया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के नायकत्व का पूर्ण निश्चय हो गया और नाटकीय 'प्राप्त्याश' फलागम' में परिवर्तित सी हो गई। प्रस्तुत प्रसंग की यही सिद्धि और सार्थकता है *।

---

* (१) आद्यंत चाणक्य का चरित्र एक उग्र कर्म-योगी के रूप में दिखाई पड़ता है। वह जानता है, श्रेय के लिये मनुष्य को सब कुछ त्याग करना चाहिए। वह समझता है, मेघ के समान...' इसी को लक्ष्य की भाँति अपने सम्मुख रखकर वह अपने जीवन का नियंत्रण करता है। सारी बुद्धि, सारा कौशल, भारतीय राष्ट्र के कल्याण के लिए उसने लगाया है जैसा करने का उपदेश अपने शिष्यों को वह आरम्भ में ही दे चुका है।

—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'

(२७) सिंहरण इस प्रतीक्षा में है कि कोई·········विजय-लक्ष्मी का मंगल-यान है।

—पृ० सं०—२२८

आमुख

प्रस्तुत अंश, 'चन्द्रगुप्त' नाटक के चतुर्थांक से लिया गया है। चन्द्रगुप्त जीवन में पहली बार अकेला हो जाता है। गुरु, मित्र, माता-पिता सब उससे विमुख हो चुके हैं। सिल्यूकस से उसका युद्ध भी प्रारम्भ हो रहा है। इस अवसर पर वह युद्ध के लिये महाबलाधिकृत और मित्र सिंहरण के पास दूत भेजता है। दूत लौट आता है और एक संदेश ले आता है। संदेश इस बात का है कि सिंहरण युद्ध का संचालन नहीं करेगा। वह महाबलाधिकृत का पद किसी अन्य को देने की प्रतीक्षा में है। इस सूचना से चन्द्रगुप्त का चन्द्रमुख मलिन हो जाता है। लेकिन इसी समय उसका स्वाभिमान और आत्म-विश्वास भी स्फुट होता है। बड़े आत्म-विश्वास के साथ वह चाणक्य और सिंहरण के अभाव को सह लेने का धारणा को पुष्ट कर लेता है। आलोच्य प्रसंग में, चन्द्रगुप्त का आत्म-विश्वास और स्वाभिमान स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या

चन्द्रगुप्त नायक को सम्बोधन करते हुये कहता है कि सिंहरण ने महाबलाधिकृत का कर्म अस्वीकार कर दिया, अपना अधिकार सौंप

---

(२) उसमें ब्राह्मणोचित विद्वत्ता और निर्भीकता के साथ ब्राह्मण-सुलभ उदारता और क्षमाशीलता भी है। उसने ब्राह्मणोचित आदर्श का बड़ा मनोहर रूप सुवासिनी के सामने रक्खा—'मेघ के समान मुक्त वर्षा सा जीवन-दान सूर्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना···'

—जगदीश प्रसाद दीक्षित : 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

दिया है। आज वह अकेला है। नायक के विश्वास और सहयोग की अपेक्षा है। वह उससे कहता है कि 'वे चन्द्रगुप्त के नाम पर प्राण देने को तैय्यार हो जायँ।' चन्द्रगुप्त के जीवन में अनेक सहयोगी ऐसे मिले हैं जिन्होंने हँसते-हँसते मृत्यु का वरण किया था। चन्द्रगुप्त स्वतः एक योद्धा है। नायक को वह विश्वास दिलाते हुये कहता है कि विजय चन्द्रगुप्त के नाम के लिये बना हुआ विशेषण है। चन्द्रगुप्त का नाम युद्ध की विजय-लक्ष्मी का संगीत है। अर्थात् चन्द्रगुप्त सतत विजयी होने वाला वीर है।

वैशिष्ट्य

अ—चन्द्रगुप्त अकेला बच गया है। संक्रान्ति उपस्थित है। सिंहरण ने सेनापतित्व करना अस्वीकार का दिया है। चन्द्रगुप्त पर इस का प्रभाव पड़ता है। उसकी वाणी में व्यग्रता आ जाती है। लेकिन महापुरुष है इसलिये अपने आत्म-विश्वास के बल पर सब कुछ पूर्ण करने का निश्चय करता है, किन्तु इस 'आत्म-प्रशस्ति' में उसकी आन्तरिक पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। वह क्षुद्र नायकों तक से विश्वास और योग की अपेक्षा करता है। चन्द्रगुप्त का धैर्य यहाँ शिथिल दिखाई पड़ता है फिर भी वह आत्म-सन्तुलन किये जा रहा है। अपनी शक्ति के विश्वास से अपने मन को फुसला रहा है।

ब—चन्द्रगुप्त की भाषा में परिस्थिति-जन्य उत्तेजना है। नवयुवकोचित आत्म-विश्वास के अनुरूप धैर्य, मन के भीतर से टूट चुका है। उसका उत्साह उखड़ रहा है इसलिये नही कि वह हार जायेगा प्रत्युत इसलिये कि गुरुदेव जैसा सहायक, सिंहरण जैसा सहयोगी साथ छोड़ चुका है। फिर भी वीरोचित उत्साह का चन्द्रगुप्त में उत्तम विकास है।

समीक्षा

नाटक की 'अवमर्श सन्धि' का चरम उत्कर्ष हो चुका है। संघर्ष अपनी शीर्ष सीमा तक पहुँच चुका है। नायक का भविष्य एक बार पुनः अन्धकार में पड़ जाता है। लेकिन फलाप्ति के पूर्व इस तीव्र संघर्ष की योजना से नाटकीय रस का हर्ष अधिक रोमाञ्चकारी होगा। रोने के पश्चात् आई हुई हँसी में अधिक सौन्दर्य होता है, अधिक आकर्षण होता है। केवल हँसना और हँसना ही जीवन की चरम प्राप्ति नहीं है। दुःख के बाद ही सुख की शोभा है। प्रसाद की पात्रा देवसेना एक स्थान पर कहती है कि 'अगर दुःख न हो तो—सुख का उपभोग करना ही नहीं चाहिये।'

अन्त

भाषा भावानुरूप है। चन्द्रगुप्त के धीरज और उत्साह की अभिव्यक्ति भली प्रकार हुई है। नाटकीय संघर्ष चरम सीमा पर है। चन्द्रगुप्त का धीरोदात्त्य स्फुट होकर उसके 'नायकत्व' की प्रतिष्ठा में योग दे रहा है। प्रसंग की सिद्धि इसी रूप में है *।

---

* (१) वह माता-पिता, चाणक्य ऐसे मंत्रदाता और कन्धे से कन्धा भिड़ाकर प्राण देनेवाले मित्र के चले जाने पर भी अपने दायित्व-भार से विमुख होने की बात तो दूर, रंचमात्र भी विचलित नहीं होता। उसी समय तो उसका क्षात्र-तेज पूर्णतया प्रज्वलित होता है। सम्मुख कठोर युद्ध की विभिपिका देख कर उसमें द्विगुणित उमंग और तत्परता आ जाती है। सिंहरण के पत्र को पढ़ कर वह तिलमिला उठता है। उसकी अखण्ड वीरता को जैसे किसी ने चुनौती दे दी है। उत्तर में नायक से कहता है—'सिंहरण इस प्रतीक्षा में है कि कोई बलाधिकृत आ जाय तो........उसके नाम का जयघोष विजय-लक्ष्मी का मङ्गल गान है।'

(२८) यहाँ आने पर मन जैसे उदास हो गया है। इस संस्था के दृश्य ने……कथा का भार लेकर मचलता हुआ जा रहा है।

पृ० सं०—२३०

प्रसंग निर्देश

प्रस्तुत अवतरण जयशंकर 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त' नामक नाटक

इस वाणी में सच्ची वीरता, तेज, आत्म-विश्वास और स्वावलम्बन से भरा अगाध उत्साह उमड़ रहा है।

—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन,

(२) चन्द्रगुप्त के चरित्र में पराक्रम एवं साहस के अनेक उदाहरण हैं। सफल एवं स्वतंत्र जीवन के लिए स्वावलम्बन और आत्म-सम्मान अपेक्षित गुण हैं। दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। स्वावलम्बन के अभाव में आत्म-सम्मान की प्राप्ति सम्भव नहीं और आत्म-सम्मान की भावना स्वावलम्बन के लिए प्रेरित करती है। चन्द्रगुप्त में आत्म-सम्मान की भावना उसकी सद्‌शिक्षा का ही प्रसाद हैं।

सिंहरण का त्याग-पत्र पाकर उसका आत्म-सम्मान और स्वावलम्बनपूर्ण कठोर कर्म-भाव प्रदीप्त हो उठता है—'चन्द्रगुप्त युद्ध करना है और विश्वास रखो उसके नाम का जयघोष विजय-लक्ष्मी का मङ्गल गान है।—'

—जगदीशप्रसाद दीक्षितः 'प्रसाद के नाटकीय पात्र'

(३) उसमें अपने प्रति अपने प्रचण्ड पराक्रम के प्रति पूर्ण विश्वास है। विजय को चिर-सहचर मानना और अपने नाम के जय-घोष को विजय-लक्ष्मी का मङ्गल गान समझना उसके सात्विक-गर्व का ही परिचायक कहा जायगा।

— विश्वनाथ : बैजनाथ

से लिया गया है। चतुर्थ अंक के नवें दृश्य का प्रारंभ कार्नेलिया की इस कोमल कल्पनापूर्ण उक्ति के द्वारा हो रहा है।

प्रसार

आचार्य चाणक्य ने अपना जीवन-अभिप्रेत सुवासिनी से बता दिया। राक्षस के महामंत्रित्व का निश्चय एवं सुवासिनी के साथ उसके परिणय को रहस्यपूर्ण कल्पना भी अब सुवासिनी से अनजानी नहीं रही। चाणक्य ने उसे बन्दी कर कार्नेलिया के हृदय में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम पैदा करने के लिये भेजा। सुवासिनी प्रयाण कर चुकी है। बन्दी भी हो चुकी है अब वह कार्नेलिया की सेवा में उपस्थित की जाने वाली है। कार्नेलिया को इसीलिये प्रेम और कल्पना का कथन करते हुए मंच पर उपस्थित किया गया है। उसकी इसी भाव-प्रवण मनःस्थिति में, सुवासिनी आकर प्रेम के बारे में कह सुन कर कार्नेलिया की अभिन्नता प्राप्त कर लेती है।

व्याख्या

कार्नेलिया भारतीय-सीमा के ग्रीक शिविर में बैठी है। सिकन्दर के आक्रमण के समय वह इसी स्थान के आस-पास ठहरी थी जबकि उसका भारतीय संस्कृति, प्रतिभा और रूप-यौवन से परिचय हुआ था। चाणक्य के विवेक और चन्द्रगुप्त के स्नेह से उसका मन भर गया था। वह पुनः भारत की सीमा पर आ गई है। पुरानी सुधियों में उसका मन खोया-खोया सा हो रहा है (चन्द्रगुप्त की स्मृति आ रही है)। ऐसी ही मनः स्थिति में कार्नेलिया का कथन है—

"इस स्थान में आने पर चित्त की शान्ति नष्ट हो गई। इस स्थान के कारण उसकी स्मृति के चित्र उभर आये हैं। उन चित्रों के दर्शन से उसके चित्त की एकाग्रता में विक्षेप पड़ गया

है। सब कुछ छिटफुट-छिटपुट लगने लगा है। लगता है यह संध्या एक नारी है जो पक्षियों के गति के माध्यम से शान्ति*-रूपी रात्रि का आमन्त्रण कर रही है। इस निमन्त्रण की प्रतिक्रिया भी हो चुकी है। दो-चार नक्षत्र आकाश में दिखाई पड़ रहे हैं। (अर्थात् जिसे बुलाया गया वह आ रहा है। प्रकृति के भीतर आमन्त्रण और श्रवण तथा तदनुकूल आचरण हो रहा है। कार्नेलिया के मन की साँझ भी किसी को बुलाती है पर कौन सुनता है इसे ?) [ये दो-चार नक्षत्र आशा के भी हो सकते हैं। छायावादी-युग की 'आशा', तारे और प्रातःकिरण से प्रायः उपमित हुई है]—इस सान्ध्य दृश्य को देख कर लगता है इस संसार के (पिता और चन्द्रगुप्त के युद्ध की तरह ही) संघर्ष की भाँति ही एक संघर्ष प्रकृति में उठा हुआ है। और प्रकृति की सृष्टि खतरे में है, अपनी रक्षा तारों रूपी खील से युक्त ढाल के द्वारा करने जा रही है।—ऐसी विषम परिस्थिति है, फिर भी मधुर वायु किसी मधुर संदेश को लिये बिना परिस्थिति के ध्यान किये बिना कहीं अपने प्रिय के पास चला जा रहा है। [कार्नेलिया का मन पिता और प्रेमी के इस युद्ध में एकदम नहीं लगता। वह तो इस मधुर वायु† की तरह उसके हृदय का संदेश अपने प्रिय तक पहुँचाने के लिये मचल रहा है]

विमर्श

कार्नेलिया, ग्रीक-शिविर में गई है। ऐसे स्थान पर ही उसका चन्द्रगुप्त से परिचय हुआ था। संस्थानैक्य से उसे स्मृति हो आई

---

* शान्ति को लेखक अन्यत्र सिंहरण के कथन के प्रसंग में रजनी के द्वारा उपमित किया है

† मन की उपमा वायु से गीता में भी दी गई है प्रस्तुत स्थान पर लेखक की उद्भावना मौलिक नहीं है।

है। संघर्ष का समय है फिर भी उसका मन चन्द्रगुप्त के पास प्रणय-संदेश भेजना चाहता है। इसी परिस्थिति की व्यञ्जना प्राकृतिक लक्षणा के व्याज से की गई है।

(ब) कार्नेलिया ने प्राकृतिक रूपक के द्वारा अपने चित्र की व्यथा का निवेदन किया है। 'सरला संध्या'—उसके ही सरल स्वभाव का प्रतीक है। पक्षियों का कलरव उसके हृदयगत चाञ्चल्य का प्रतीक है। दो-चार नक्षत्रों का उदय—उसकी आशा की अभिव्यक्ति करता है। प्रकृति उसकी परिस्थिति है—सृष्टि की प्रेम-सृष्टि है जिसकी रक्षा वह आशा के तार से युक्त, विश्वास की ढाल से कर रही है। संक्रमण उसके मन का संघर्ष है। पवन का मधुर संदेश उसका हृदय-गत उछाह है जो प्रिय तक संदेश-वाहन करना चाहता है। इस प्रकार पूरा कथन साभिप्राय अथच नितान्त उपयुक्त और मधुर है।—[द्रष्टव्य—छायावादी-युग की कथन-शैली इसी ढंग से की थी। प्राकृतिक उपामानों के माध्यम से कवि अपनी व्यक्तिगत सुख-दुःख की बात कहा करते थे। उस शैली का आदर्श रूप यहाँ स्फुट हुआ है। 'प्रसाद' इस शैली के जन्मदाता थे]।

वैशिष्ट्य-कथन

सूत्रात्मक प्रसंग—प्रसंग सूत्रात्मक है। सुवासिनी जिस अभिप्रेत से आती है उस अभिप्रेत के अनुरूप वातावरण तैयार किया जा रहा है। इसीलिये कार्नेलिया के मन में राग-विराग की बात उठाई गई है। सुवासिनी के आते ही वह 'स्त्री-जीवन' 'यौवन' इत्यादि पर प्रश्न करती है और उससे प्रभावित होती है।

भावानुरूप भाषा—लेखक भावानुरूप भाषा-प्रस्तुत करने में खूब सफल हुआ है। भाषा 'लाक्षणिकता' और 'संकेतग्रह' के सूचक

उपकरण विद्यमान हैं। प्रत्येक भाव के लिये एक प्रतीक रखा गया है और उन प्रतीकों में मानवी-भावनाओं को सम्पुटित करने में लेखक को पूरी सिद्धि प्राप्त हुई है। सरला संन्ध्या से लेकर पवन तक सभी प्राकृतिक उपादान मानव-मन के प्रतीक हैं किन्तु इसमें व्यञ्जकता को निबाहने की चेष्टा की गई है। कोई भी बात आरोपित नहीं जान पड़ती। भाषा की शक्ति का उदात्त रूप यहाँ परिलक्षित होता है।

उपसंहार—कार्नेलिया का 'प्रेमकथन', 'प्रकरी', नायिका सुवासिनी की अवतारणा, 'मार्मिक भावाभिव्यक्ति', 'प्राप्त्याशा' की दिशा का निर्धारण इत्यादि विशेषताओं का प्रसंग से निकट सम्बन्ध है।

फलागम का किञ्चित आभास प्रसंग के पश्चात ही होने लगता है। नाटकीय Crisis (संक्रमण) में एक प्रकार की रसवत्ता नियोजित हो जाती है।

---

(२६) अकस्मात् जीवन-कानन में एक राका-रजनी की मधुर छाया में छिप कर...............मकरंद सी उसमें छिपी रहती है।

पृ० सं० — २३१

अंकुर

प्रस्तुत प्रसंग ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' से लिया गया है। कार्नेलिया भाव-प्रवण होकर सुवासिनी से यौवन और प्रेम का रहस्य पूछती है। सुवासिनी का उत्तर विवेचन के लिये उपस्थित किया गया है।

प्रसार

कार्नेलिया का मन सुधियों से भरा हुआ है। उसे यौवन और प्रेम की यातना-जनित पीड़ा अनुदिन हो रही है। वह व्यग्र हो रही है

और सहसा नवागता से यौवन और प्रेम का प्रश्न करती है। चाणक्य की 'अभिप्रेत-सिद्धि' के लिये पहले से ही पट-भूमि प्रस्तुत की जा चुकी है। सुवासिनी उत्तर देती है—

आलोच्य विश्लेषण

कि वसंत के आगमन की भाँति ही शैशव की सन्धि तोड़कर नयी वय का सहसा प्रारम्भ हो जाता है। वसन्तागम की सारी प्रक्रिया नव वयागम के समान ही होती है। जीवन को एक उपवन समझ लीजिये। जिस प्रकार उपवन में सहसा किसी रात में छिप कर वसंत आ जाता है ठीक उसी प्रकार शैशव के जीवन पर सहसा नयी वय समासीन हो जाती है। वसंतागम के पश्चात जिस प्रकार उपवन की क्यारियों में शोभा और सौन्दर्य आ जाता है उसी प्रकार वही शरीर, वही आँखें, वही अँग सहसा द्विगुण शोभा प्राप्त कर लेते हैं। और वसंती कोकिल के गीत के समान यौवन; हृदय में प्रश्न सा उठाने लगता है। अकेलापन सुहाता नहीं। मन में कोई दूसरा आकर उठने-बैठने लगता है। यह यौवन-प्राप्त रूप मनुष्यों के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। सुन्दर को सौन्दर्य-प्रेमी पसन्द करने लगता है और सुन्दर लगने वाला भी किसी पूरक की टोह में लग जाता है। और जब कोई मिल जाता है तब वसतागम से खिलने वाली कलिका की भाँति यौवन-वन में प्रेम की कलिका खिलती है। लेकिन यौवन का यह प्रेम बड़ा दुःखद होता है। कलिका के मकरंद की भाँति प्रेम के पुष्प में दुःख, विश्लेष और अश्रु के मकरंद विद्यमान रहते हैं। यही प्रेम है। यही यौवन है।

विशेषतायें

(अ) यौवन के लिये वसंत के प्रतीक भी योजना की गई। उपमान और उपमेय की क्रम-व्यवस्था से इतनी सटीक व्यवस्था बिठाई गई है कि आदर्श 'साङ्गरूपकालंकार' की योजना बड़ी सफलता से निभ

जाती है। आलंकारिकता और भाव-प्रवणता तथा व्यवस्थित क्रम-विधान प्रकरण की प्राणवन्त विशेषता है।

(ब) नाटकीय 'फालगम' के लिये निश्चित प्राप्त्याशा के लक्षण उपस्थित हो रहे हैं। नायिका के मन में नायक के प्रेम की पट-भूमि विस्तृत की जा रहा है।

पर्यवसान

प्रसंग पूर्णतः काव्यात्मक है। मुक्तक के रूप में इसकी नाटक से अलग भी महत्ता है। लेकिन, यह काव्यत्व; नाटकीय कथानक के आकाश में बादल के टुकड़े की तरह नहीं है। उसी अकाश का थोड़ा अधिक प्रकाशित भाग है जो आकाश से अलग नहीं है, एक नक्षत्र के पार्श्व का है। भाषा में लालित्य है। कथा-क्रम को प्रसार देने में प्रकरण काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इन्हीं रूपों में प्रसंग की सार्थकता है* ।

---

* सुवासिनी प्रेम करना जानती है। कहीं-कहीं वह कर्त्तव्य और प्रेम में अन्तर न पहचान सकने के कारण धोखा खाती है परन्तु गिर-चढ़कर सम्हलती जाती है। राक्षस को समर्पण करने के पश्चात् वह उसका कर्त्तव्य हो जाता है और पूर्व स्मृतियों के अङ्क का चाणक्य उसका प्रेम-पात्र। उसके सामने एक ममस्या आ खड़ी होती है जिसका सरलीकरण चाणक्य अपने आप प्रस्तुत कर देता है। कार्नेलिया से वह प्रेम की व्याख्या भी करती है जो उसके कटु-अनुभव का परिणाम मात्र है।

'अकस्मात जीवन कानन में एक राका-रजनी की छाया में छिप...'

—फूलचन्द पाण्डेय

(३०) वही स्त्री-जीवन का सत्य है…………स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।

पृ० सं०—२३२

आरम्भ

प्रसंग 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ-अंक से लिया गया है। सुवासिनी कार्नेलिया की भाव प्रवणता को भाँप लेती है और प्रेम का रहस्य बताते हुए कहती है 'प्रेम में स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है'। कार्नेलिया स्मृति के इस सुख को भोग रही थी। सुवासिनी के द्वारा अपने मन का गोपन तनिक स्फुट होते हुए देख उसकी लज्जा संवृत नहीं हो पाती और वह अपनी लज्जा छिपाते हुये पूछती है कि सुवासिनी यह क्या कह रही है—और अन्त में कहती है—'स्मृति बड़ी निष्ठुर है। यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है तो संसार ज्वालामुखी है।'

विस्तार

सुवासिनि अपने अभिप्रेत-सिद्धि का मार्ग बनाने में सफलता प्राप्त कर रही है। वह कार्नेलिया की मनःस्थिति को भली प्रकार पहचान चुकी है। वह प्रेम के सूक्ष्मातिक्ष्म रहस्यों का सैद्धान्तिक विवरण प्रस्तुत कार्नेलिया को उभाड़ना चाहती है। कार्नेलिया जब छिपाना चाहती है तो इसे भी यौवनोचित क्रिया कह कर वह कार्नेलिया का घाव हरा कर देती है। उसके धीरज का बाँध टूट जाता है और वह संसार को ज्वालामुखी कहती है। विवेच्य प्रसंग में कार्नेलिया का संवरण यौवनोचित [illegible] गया है और समर्पण के पूर्व उठनेवाली लज्जा* की अभिव्यक्ति की गई है।

---

* लज्जा की सूक्ष्मता का 'प्रसाद' को बड़ा व्यापक अध्ययन था। वह पुनः-पुनः अपने साहित्य में इसकी चर्चा करते हैं। 'हे लाज भरे

व्याख्या
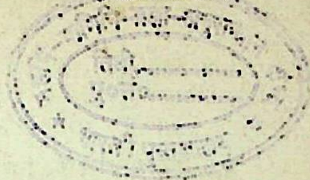
संवरण करना स्त्री के जीवन की स्वाभाविकता है। जब स्त्री अपने मन की माँग को न किसी से कहती है न किसी की माँग पर स्वीकृति प्रदान करती है, वहीं प्रेम का विचित्र रहस्य जीवन्त होता है। ऐसी अवस्था में प्रेमिका और प्रेमिक दोनों प्रवञ्चित होते हैं। जब कभी नारी अपनी इच्छा को दबा कर 'ना' कहती है, उसी समय उसके हृदय की धड़कन के बीच काम के संगीत का स्वर फूटता है। अर्थात् संकोच, काम-यातना का प्रथम चरण है। वही काम जब सुन्दरियों को उद्दीप्त करता है तब उनके भीतर एक अपरिचित स्त्रैण्य की भावना जाग उठती है। इसे ही लज्जा कहा जाता है। लज्जा से युवती की सौन्दर्य-वृद्धि होती है। इस लज्जा से स्त्री के स्त्रीत्व को स्वास्थ्य मिलता है (अर्थात् प्रेम उदीप्त होने पर भी स्त्रियाँ संकोच करती हैं, काम की यातना सहती हैं। इस लज्जा से नारी का स्त्रैण्य शोभित होता है। लज्जा नारी की शोभा है)—इस प्रकार सुवासिनी कार्नेलिया की लज्जा को पहचान लेती है।

वैशिष्ट्य

(अ) सुवासिनी धीरे-धीरे कार्नेलिया पर अधिकार करती जा रही है। उसकी स्नेह-प्रवृत्ति का रहस्य ज्ञात करने में सफल होती जा रही है। इस प्रकार फलागम की दिशा का निर्धारण होता जा रहा है।

(ब) सुवासिनी परम चतुर नारी है। वह एक नव-वय-प्राप्त बालिका की कमजोरियों की पकड़ की कला अच्छी तरह जानती है। सुवासिनी के चरित्र पर इन पंक्तियों से काफी प्रकाश पड़ता है।

सौन्दर्य बता दो, मौन बने रहते हो क्यों ?' तथा 'कामायनी' के लज्जा-सर्ग में इस प्रकार की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।



अन्त

विषयानुरूप भाषा-शक्ति को लेखक ने आयत्त किया है। नारी-जीवन की सूक्ष्म-चेतना को पहचानने में उसे अच्छी सफलता मिली है। 'लज्जा' की सूक्ष्म चिन्ता लेखक के साहित्य में यत्र-तत्र छिट-पुट भाव से विद्यमान है जिसका चरम उत्कर्ष 'कामयानी' के लज्जा-सर्ग में हुआ है। प्रस्तुत स्थान पर सुवासिनी के कौशल में नाटकीय-कौशल एवं भावाभिव्यक्ति में लेख का काव्य-कौशल दर्शनीय है*।

---

(३१) मैं आज जैसे निष्काम हो रहा हूँ.........आज मैं धन्य हूँ।

पृ० सं०—२४५

आरम्भ

नाटकीय कार्य समाप्त हो चुका। चाणक्य के सारे निश्चय पूर्णता को प्राप्त हो गये। कुछ भी बाकी नहीं बचा। खाली समय, अक्सर

---

* जब लिखते थे तुम सरस हँसी
अपनी, फूलों के अञ्चल में,
अपना कलकण्ठ मिलाते थे
झरनों के कोमल कल में।
× × ×
जो आकर्षण बन हँसती थी
रति थी अनादि वासना वही,
अव्यक्त प्रकृति उन्मीलन के
अन्तर में उसकी चाह रही।

—कामायनी

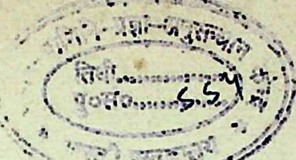
ऐसे तीव्र साधकों को विराग होता ही है। चाणक्य का बनाया हुआ यह सब कुछ है। जिनके लिये उसने बनाया वह उसका भोग करें। ब्रह्मा सृष्टि का निर्माण करता है भोक्ता नहीं बनता। चाणक्य इस साम्राज्य-सृष्टि का स्रष्टा है। चाणक्य ने लक्ष्य-सिद्धि के लिये समयानुसार अनर्थों से भी बड़े अनर्थ किये, नृशंसता की से भी बड़ी नृशंसता की। इसका प्रायश्चित होना ही चाहिए; उन निर्दोष हुतात्माओं का शाप चाणक्य पर पड़ेगा ही। चाणक्य के निर्वेद की पट-भूमि में यही भावना सम्पुटित की गई है। नाटक के चतुर्थ अंक के १३ वें दृश्य में चाणक्य अत्यन्त विनीत, त्यागी, उदार और थके हुए रूप में; बदले हुए रूप में, मंच पर उपस्थित होता है।

प्रसंग-निर्देश

चाणक्य अन्तःप्रायश्चित कर रहा है। चाणक्य की महानता से उसके सभी प्रतिद्वन्दी पराभूत हो चुके हैं। कथा एकदम केन्द्रित होकर समाप्ति की अवस्था पर आ गई है। चन्द्रगुप्त का पिता सेनापति मौर्य, चाणक्य से क्रुद्ध है। एक बात छूट कर रह गई है। नाटक के सम्पूर्ण पात्रों को चाणक्य किसी न किसी रूप में प्रभावित कर चुका है। प्रस्तुत प्रसंग की योजना इसी अभिप्रेत से की गई है। चाणक्य अत्यन्त ऊँची भूमिका पर उदात्त चिन्तन कर रहा है। इसी समय मौर्य आकर आक्रमण करना चाहता है। सुवासिनी आकर उसे बचा लेती है। आलोच्य प्रसंग में चाणक्य का उदात्त चिन्तन पल्लवित किया गया है।

व्याख्या

चाणक्य सोचता है कि राक्षस को मन्त्रित्व सौंपकर सुवासिनी को ब्याह कर चंद्रगुप्त को सम्राट बना कर नन्द को नष्ट करके और चन्द्रगुप्त



के जीवन के बाधक सारे कुचक्रों को समाप्त कर वह अपने जीवन के सारे कर्त्तव्य पूरा कर चुका—उसके लिये कोई काम अब शेष नहीं रह गया है। वह ब्राह्मण है। त्याग ब्राह्मण का मुख्य चरित्रगत गुण है। अतः आज वह 'निष्काम' अनुभव कर रहा है। उसे लगता है उसका सारा कृत्य एकमात्र भ्रम ही था उसने जो कुछ किया अपने लिए नहीं किया। ब्राह्मणत्व का सच्चा त्याग और क्षमा का रूप अब तक लुप्त था। आज वह जाग रहा है। ब्राह्मणत्व की प्रज्ञा से उसे लगता है, आज उसकी चेतना के सागर में शान्ति है। किसी प्राप्ति के लिए उसका मन उद्विग्न नहीं है। उसका विशुद्ध ज्ञान उसने पवित्रतम रूपसे उद्भासित हो रहा है। उसे लगता है कि वह अबतक कुम्हार के चक्र की तरह चक्रित होकर अपने उद्देश्य-घट का निर्माण करता रहा है। चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाने के लिए चक्रित होता रहा है। वह पूर्ण हो गया। जैसे बना हुआ घड़ा पूर्ण होने पर चाक से उतार दिया जाता है वैसे वह सब निर्माण आज अपने से अलग कर रहा है। आज उसकी आत्मा अत्यन्त विस्तृत हो चुकी है। सबके सुख के लिए उसकी आत्मा शुभ-कामना कर रही है। वह कृतकृत्य है।

कतिपय विशेषतायें

(अ) चाणक्य का महानतम रूप यहाँ स्फुट हुआ है। वह महान विद्वान, कूटनीतिज्ञ, उद्देश्य के लिये सतत-तन्मय-व्यक्तित्व होने के साथ ही महर्षि भी है। पर्वतेश्वर ने जब वशिष्ठ के माहात्म्य का उल्लेख किया तभी उसने कहा था कि—'भविष्य निर्णय करेगा कि महर्षि किन्हे कहते हैं' आज उसके ऋषित्व का चरम विकास दिखाई पड़ता है। इस प्रकार प्रसंग चाणक्य के व्यक्ति में एक और महान महत्त्व जोड़ देता है जिससे चाणक्य असाधारण प्रतिभाशील और कर्मठ समाज-द्रष्टा होने के साथ ही महान महर्षि भी सिद्ध हो जाता है।

(ब) नाटकीय कथानक की 'फलागम' अवस्था निश्चित हो गई है। सन्धियों का 'निर्वहण' का रूप स्पष्ट हो गया है। कथा एकदम केन्द्रित हो चुकी है। चाणक्य मंच से हट रहा है। कार्य की फलाप्ति चन्द्रगुप्त को हो रही है। सामाजिक जीवन में एक तरह से चाणक्य का पतन हो जाता है, वह राजनीतिक मंच से हटकर परलोक-साधना की ओर लग जाता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के नायकत्व की प्रामाणिकता का संदेह नहीं बच पाता। चाणक्य का अन्तिम रूप एक क्षमाशील ब्राह्मण और गुरु का है। 'छोकरियों से बात करने का समय नहीं है चन्द्रगुप्त !' वाला चाणक्य समाप्त हो गया है और वह चन्द्रगुप्त भी अब अवशेष नहीं है। अब सम्राट हैं सम्राट के गुरुदेव हैं, बस ! इन पंक्तियों में चाणक्य के व्यक्तित्व का यह रूप उचित सीमा तक स्पष्ट हो सका है। *

---

* इस प्रकार संघर्ष में उसका जीवन किस प्रकार निखरता चल रहा है—यह कलाकार की श्रेष्ठता है। एक ओर राजनीति है जहाँ वह कूट कार्यशील और अचल हिमानी के समान जड़-गौरव का उपासक है। दूसरी ओर अपने आपको झकझोर कर प्रेम की बलि उद्देश्य के लिए चढ़ाता है जिसमें सचमुच ही प्रेमिका सुवासिनी का जीवन सुखद हो सकता है। अन्तर्ज्वाला की एक नन्हीं सी चिनगारी लेकर वह जीवन से विरक्ति की ओर जाता है जहाँ सफल ब्राह्मणत्व की रेखा परिलक्षित होती है—

'मैं आज जैसे निष्काम हो रहा हूँ। विदित होता है कि आज तक जो कुछ किया......।'

—फूलचन्द्र पाण्डेय



(३२) किन्तु सन्धिपत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते...... एक निर्मल स्रोतस्विनी का रहना आवश्यक है।

पृ० सं०—२५०

आधार

प्रस्तुत अवतरण 'चन्द्रगुप्त' नाटक के चतुर्थ अंक के अन्तिम दृश्य से लिया गया है। व्याजान्तर से प्रस्तुत वाक्य को भरत-वाक्य समझना चाहिये। नायक की फलाप्ति इसी मांगलिक प्रसंग से होती है। चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस की सन्धि हो रही है। सन्धि-सम्बन्ध को अत्यन्त पुष्ट करने के लिये चाणक्य पारिवारिक विवाह की योजना करता है। वह सिल्यूकस से कार्नेलिया के कन्यादान की याचना करता है जिसके लिये वह उतने दिनों से प्रयत्नशील रहा।

विवृति—सामान्य सन्धियाँ तत्कालिक और परिस्थिति-जन्य होती हैं। राजनीति का नियम है कि सन्धि को पुष्ट करने के लिये वैवाहिक सम्बन्ध किये जायँ। कार्नेलिया भारतीय वातावरण में पली हुई, चन्द्रगुप्त को अन्तर्मन से चाहने वाली भावुक और सुन्दर रमणी है। उसे साम्राज्ञी बनाकर वह चन्द्रगुप्त के भावी जीवन में आनेवाले विघ्नों को समाप्त करना चाहता है। इसी उद्देश्य के लिये नन्द के पतन के बाद अवमर्श सन्धि का प्रारम्भ हुआ था। प्रस्तुत प्रसंग में चाणक्य के द्वारा सन्धि के नियमों का शास्त्रीय विवेचन स्फुट किया गया है।

व्याख्या

चाणक्य का कथन है कि सन्धि-पत्र स्वार्थपूर्ण भावनाओं के द्वारा पुष्ट नहीं हो सकते। कागज पर की गई हस्ताक्षर के द्वारा युद्ध और रक्षार्थ-पूर्ण संघर्षों का नियमन नहीं हो सकता। वास्तविक सन्धि हृदय

से सम्बद्ध होती है। दो सम्राटों में युद्ध-प्रेमियों और महत्त्वाकांक्षियों में युद्ध जब कभी भी हो सकता है। दोनों के बीच एक ऐसे सम्बन्ध की आवश्यकता है कि दोनों एक दूसरे के हित के लिये विवश किया करें। क्षुद्र स्वार्थों की बाढ़ टूट न सके। तुम दोनों सम्राट हो। बालू के तटों की तरह हो, जो कभी भी टूट सकते हैं। दो तटों को अलग करने के लिये तथा दोनों के बीच सम्बन्ध बनाये रखने के लिये जिस प्रकार नदी की धारा आवश्यक होती है उसी प्रकार तुम दोनों को संघर्ष से अलग करने के लिये और स्नेह से जोड़ने के लिये विवाह सम्बन्ध की आवश्यकता है।

वैशिष्ट्य

अ—चाणक्य एक महान राजनीतिज्ञ था। वह सन्धि और युद्ध के नियमों और अवस्थाओं को अच्छी प्रकार समझता था। 'अर्थशास्त्र' में उसके राजनीतिक विचार संकलित हैं। प्रस्तुत प्रकरण में वह महान विचारक और राजनीतिज्ञ दोनों रूपों में सामने आता है।

(ब) प्रस्तुत सम्बन्ध मात्र राजनीतिक उद्देश्य से ही नहीं किया जा रहा है उसका हार्दिक और भावपूर्ण पक्ष भी है। दोनों एक दूसरे के प्रेमी हैं इस प्रकार नाटकीय रस का 'रसाभास' नहीं होने पाता है।

(स) स्रोतस्विनी और बालू के कगारों का रूपक कवित्वपूर्ण होने के साथ ही समयानुरूप भी है। 'रूपक' में क्रम मूलक इ नो व्यवस्था और भावमूलक इतनी व्यंजकता है कि लेखक का कौशल के विषय में मुग्ध हो जाना पड़ता है। बालू के कगारों में सम्राटों की शुष्कता, अस्थिर निश्चयात्मकता सभी कुछ सम्मत है। नारी के लिये स्रोतस्विनी का उपमान उपस्थित करने में बड़ी भाव-सम्पदा है।



छ
खो